सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष : 47
अंक : 10
जनवरी 2015

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाई- 283202 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशन तिथि - 01.01.2015

एक प्रति : रु. 20

अमृत कण

आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नो त्रसेत्॥

सुख–दुःख का कारण जीव स्वयं ही होता है, ऐसा समझकर कल्याणकारी मार्ग का ही अवलम्बन लेना चाहिए, फिर भयभीत होने की कोई बात नहीं।

• • •

हितमेवानुरुध्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः।
रजोमोहावृतात्मानः प्रियमेव तु लौकिकाः॥

परीक्षक – विवेकीजन (सारासारविचारद्वारा) ठीक–ठीक परीक्षा करके हितकर मार्ग का सेवन करते हैं, परन्तु रजोगुण और तमोगुण से आवृत बुद्धि वाले लौकिक मनुष्य (हिताहित का विचार न करे तत्काल) प्रिय (मालूम होने वाले आचार आदि) का सेवन करते हैं (इसलिए दुःखी होते हैं)।

• • •

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥

सम्पूर्ण प्राणियों की सभी चेष्टाएँ सुख– प्राप्त करने के लिए ही होती है और वह सुख बिना धर्माचरण के प्राप्त हो नहीं सकता, अतः धर्म में परायण रहना चाहिए।

• • •

मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृण्हाति कुरु यत्नमजन्मनि॥

अरे मूर्ख (मनुष्य)! क्या तुम मृत्यु से डर रहे हो? डरे हुए को क्या मृत्यु छोड़ देती है? ऐसा समझ रहे हो तो यह तुम्हारी मूर्खता है। मृत्यु तो सबको काल का ग्रास बना देती है। वह तो जो जन्म ही नहीं लेता, उसी को नहीं पकड़ती है। इसलिए ऐसा प्रयत्न करो, जिससे पुनः जन्म ही न लेना पड़े।

• • •

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 47 अंक : 10

यामाराध्य विरिञ्चिरस्य जगतः स्रष्टा हरिः पालकः।
संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्ध्येया च या योगिभिः।
यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञा परां
तां देवीं प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्गप्रदाम्।।

जिनकी आराधना करके स्वयं ब्रह्माजी इस जगत के सृजनकर्ता हुए, भगवान् विष्णु पालकर्ता हुए तथा भगवान शिव संहार करने वाले हुए, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं और तत्वार्थ जानने वाले मुनिगण जिन्हें मूल प्रकृति कहते हैं– स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले उन जगज्जननी भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

फरवरी/मार्च 2011

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	9
3.	गुरु देव के संस्मरण	12
4.	जीवन में समर्पण का महत्व – ले. स्वामी सुबोधानन्द	16
5.	नववर्ष मंगलमय हो – सम्पादक की लेखनी से	18
6.	गुंजन – डॉ. विजय सिंह	19
7.	सादासन	24
8.	योगी भवति दु:खहा – स्वामी आत्मशरणानन्द	26
9.	सत्त्वानुरूपा श्रद्धा भवति – कृष्ण कुमार पाण्डेय	28
10.	आश्रम समाचार	31
11.	जीवन तत्त्व साधन	32
12.	नववर्ष 2015 के शुभावतरण पर त्रिभाषा रचित – द्वारका प्रसाद शर्मा	34
13.	जय सिंह जादौन की प्राण रक्षा – जगदीश राए बंसल	36
14.	गुरु वन्दना – स्व. बनवारी लाल चतुर्वेदी	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 160.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

त्रिगुणातीत अवस्था

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

प्रकृति के तीन गुण हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण हर व्यक्ति का मन त्रिगुणात्मक है। सारा संसार गुणों से व्याप्त है। सबसे बड़ा आश्चर्य है अनन्त प्राणियों के मनों में त्रिगुणात्मक तीन गुण ही व्याप्त हैं। गुण तीन ही होने पर भी स्वभाव सबका अलग–अलग है। सतोगुण आदि की मात्रा भेद के कारण ही भिन्न स्वभाव सारे प्राणियों का हुआ करता है। सतोगुण आदि ये तीन गुण ही इस जीव को बाँधते हैं। **'तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम् सुख संगेन बध्नाति ज्ञान संगेन चानघ'** सत्व गुण निर्मल होने से प्रकाशक है। सतोगुण पाप रहित हुआ करता है। सतोगुणी मनुष्य पाप से डरता है अनामय होता है, सतोगुण सुख से बाँधता है तथा ज्ञान से बाँधता है। मैं ज्ञानी हूँ, मैं योगी हूँ ऐसा भाव भी बन्धन है। देवताओं में सतोगुण काफी होता है। वे सुख में ही पड़े रहते हैं। आत्म प्रकाश की ओर जाने की प्रवृत्ति नहीं होती। मनुष्य लोक का सुख बहुत सीमित है। छोटे–छोटे कीट पतंग को भी सुख का अनुभव होता है। दो–चार घण्टे जीवित रहने वाला कीड़ा भी सुखी दुःखी होता है। यदि उसे बताया जाये कि मनुष्य सौ वर्ष जीता है, पहले तो सौ वर्ष नहीं समझेगा, यदि समझ लेगा तो बहुत आश्चर्य होगा। देवता लोग कल्पान्त देह वाले होते हैं। जैसे मनुष्य अपनी सौ वर्ष की आयु को कम समझता है वैसे ही देवता कल्पान्त आयु को भी बहुत थोड़ा समझते हैं। मैंने तुम्हें एक दिन बताया था कि प्रभु ही किसी दूसरे का नाम लेकर अपने ही चरित्र सुनाया करते थे। प्रभु जी बताया करते थे। उस योगी किसी गाँव में गया वहाँ दो बालक थेकि कोई योगी को अच्छे लगे। उन्होंने उन पर शक्तिपात कर दिया। उनके प्राणकोष ऊपर चले गये और नीचे से खेचरी का ताला लग गया। प्राणकोष के ऊपर चले जाने के बाद खेचरी कण्ठ विवर को रोक लेती है, तो प्राण नीचे नहीं आ पाते।

उनके संकल्प से ऊपर रहते हुये भी स्पन्दन रहता है, किन्तु शरीर में कोई परिवर्तन नहीं आता। उस योगी के शक्तिपात से वे लड़के दो–तीन सौ वर्ष तक समाधि में ही बैठे रहे। उसके बाद समाधि से उठे तो **'वृत्तिसारूप्यम्'** तो होना ही था। उन्हें अपना घर याद आया वे घर की ओर गये। किन्तु वहाँ पर अपना घर उन्हें नहीं मिला। माँ–बाप भाई–बन्धु कोई भी नहीं मिला। सब नये लोग ही मिले। अन्त में एक अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति ने बतलाया इस समय तो मैं कम से कम चार–पाँच पीढ़ी में हूँ। मैं तो तुम्हारे नाती का भी नाती हूँ। ऐसा वह बाबा कहने लगे। किन्तु उन बच्चों को दो सौ–तीन सौ वर्ष का समय क्षण भर के बराबर लग रहा था। वे कहते थे कि हम तो थोड़ी देर पहले ही समाधि में बैठे थे। उस आनन्द के अन्दर और अनुभूतियाँ खत्म हो गई। कल्पान्त देह वाले देवता भी उस सुख को क्षणिक मानते हैं। इसलिये **'सुखङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गे चानघ'**। सतोगुणी देवता

सुख से बँधते हैं अतः काल का ज्ञान नहीं होता।

दुःख में काल का ज्ञान होता है। जो गुण राम पैदा करता है। रजो गुणी कर्मप्रधान व्यक्ति होते हैं प्रवृत्ति मार्ग में ही बढ़ते चले जाते हैं। उपनिषदों में बताया है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों जीव को बाँधते हैं।

'तयोस्तु श्रेय आददानः साधुभवति'। जो प्रवृत्ति में चलता है लक्ष्य से गिर जाता है। तमोगुण अप्रवृत्ति, प्रमाद, आलस्य, अज्ञान से बाँधता है। मोह में उसे ग्रस्त कर लेता है। इन गुणों में से कभी सतोगुण प्रधान होता है। शेष दो गौण रहते हैं। कभी रजोगुण और तमोगुण क्रम से प्रधान बनकर अन्य दो को गौण कर देते हैं। यदि सतोगुण के बढ़ जाने पर मनुष्य का शरीर छूटता है तो वह ऊर्ध्व लोकों में जाता है। रजोगुण की प्रधान में शरीर छूटता है तो कर्म करने वाले लोकों को प्राप्त होता है और तमोगुण की वृद्धि में शरीर छूटे तो साँप अजगर आदि निम्न योनियों में चला जाता है। रजोगुण वाले भी दुःखी रहते हैं। विदेशों मे लोग अधिक अशान्त हैं। लाहौर में खलीफा नियामत राय थे उनका जितना बड़ा पेट था। उतना बड़ा पेट किसी का नही देखा। दो नौकर हमेशा साथ रहते थे। वह बताता था मैंने वकालत में आठ लाख रु. कमाये। दो शादियाँ की किन्तु नरक ही भोगा। पायोरिया भी उसे हो गया था पेट व छाती में दुःख ही दुःख रहता था। कहने का अभिप्राय राजस–तामस वालों को कोई सुखी नहीं कर सकता। वे अपने मन के कारण दुःखी रहते हैं। शान्ति और सुख का रास्ता एक है सतोगुण वृद्धि हो जाये। इसका उपाय है मन्त्र–जाप, ध्यानाभ्यास, परोपकार, स्वाध्याय। ब्रह्मचर्य से सतोगुण बढ़ेगा। गुरूदेव की आज्ञा होती है दो घण्टे जाप व ध्यान करो उसे अवश्य करना चाहिये। सतोगुण शाश्वत शान्ति देता है। परम योगेश्वर ने कालचक्र युगचक्र को एक साथ चलाने वाले भगवान की वाणी सुनाई है। अपने ध्यान का प्रदर्शन मत करो। समुद्र पीकर भी होठ सूखे दिखाओ। आत्म शक्ति को भीतर बढ़ाओ शक्ति जमा होती चली जायेगी। ताकत वाला यदि किसी के अपराध को क्षमा करता है तो वही वास्तव में क्षमा है। ताकत नहीं है तो गुस्सा किसी पर चल ही नहीं सकता इसलिए वह क्षमा नहीं है। जिसे गुण विचलित नहीं कर सकते, सुख–दुःख सताते नहीं है। प्रिय–अप्रिय में जो सम है मान अपमान में जो सम है, कर्मफल की इच्छा नहीं है. जो भगवान् में विशुद्ध प्रेम रखता है वह गुणातीत हो जाता है। वह ब्रह्मत्व को पा जाता है। मैं तुम्हें प्रतिदिन गीता पाठ मे भगवान की वाणी सुनाता हूँ। प्राणीमात्र के प्राण श्री कृष्ण ने ब्राह्मी स्थिति में गीता कही है। उनके वचनों पर चलो। सतोगुण को बढ़ाओ और कृपा को पाकर त्रिगुणातीत बन जाओ। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय आदि भी सब गुणमय ही है। देखो ! ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि महायोगी हैं।

ब्रह्मरूपेण महायोगी रचयेदखिलं जगत।
विष्णु रूपेण महायोगी पालयदखिलं जगत।
रूद्र रूपेण महायोगी संहरेदखिल जगत।

अर्थात् – ब्रह्म रूप में ईश्वर जो महायोगी है संसार की उत्पत्ति करता है, विष्णु रूप में पालन तथा रूद्र के रूप में सृष्टि संहार करता है।

योगी और महायोगी में अन्तर केवल इतना ही रहता है कि महायोगी अनादि काल से योगी है। उनमें क्लेश कर्म का संस्पर्श नहीं रहता। किन्तु योगी योगाभ्यास करते–करते प्रकृति के अधिकार से मुक्त हो जाता है। बौद्धेय धर्म से आगे निकल जाता है। प्रकृति के नियम उन पर लागू नहीं होते। महासिद्धियों के स्वामी बन जाते हैं।

योगी अपनी शक्ति का स्वयं स्वामी होता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश से आगे की जो सत्ता है वह सद्गुरू सत्ता है। उसे ही ओम्, प्रणव, ब्रह्म आदि–आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। देवी भागवत् में एक कथा आती है, वह इस प्रकार है –

एक बार ब्रह्मा, विष्णु और शिव भगवती लोक में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने अलग ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव देखा– आश्चर्य चकित होकर भगवती से प्रार्थना करने लगे –

देवी ! तुम्हारे लोक में हम अलग–अलग ब्रह्मा, विष्णु, शिव का दर्शन कर रहे हैं। हमने आप के सुप्रभाव को जान लिया है। सारा संसार आप में ओत – प्रोत है।

इसी प्रकार से द्वापर युग में कृष्णावतार होने पर ब्रह्मा जी भगवान कृष्ण के दर्शन करने गये ! भगवान ने पूँछा– आप कौन से लोक के ब्रह्मा है ? इसका अर्थ यह है कि ये ब्रह्मादि अपने–अपने लोकों के लोकाधिपति हैं। एक–एक लोक के स्वामी हैं।

सद्गुरु सत्ता इन सब से आगे की सत्ता है जिसे सद्गुरु सत्ता, प्रणव सत्ता, ब्रह्मसत्ता आदि–आदि नामों से पुकारा जाता है। योगदर्शन में ईश्वर के लिये **'स पूर्वेषामपि गुरूः कालेनानवच्छेदाद्:'** कहा गया है। यह भी कि **यत्र अवच्छेदनार्थेन कालो न उपावर्तते सः गुरु।** उस सत्ता के भय से ही **'भयादस्य अग्निस्तपति भयाद तपति सूर्यः'**।

अर्थात् जिस सत्ता के भय से अग्नि जलती है सूर्य तपता है वायु चलती है। यमराज दौड़े–दौड़े फिरते हैं, वह है सद्गुरु सत्ता। एक घटना याद आई –

एक बार श्री प्रभु जी हरिद्वार में कुम्भ में गये थे। श्री मुल्खराज जी महाराज भी साथ में थे। वे कहने लगे–प्रभो ! यहाँ कैसे पता लगायें कि कौन महात्मा कितनी पहुँच का है। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया। हर व्यक्ति के आस–पास किरणें होती हैं। जिसके आस – पास की किरणें जितनी दूर तक हों वह उतना ही पहुँच का महात्मा होता है। एक बार श्री प्रभुजी ऋषिकेश आश्रम में विराजमान थे। ध्यानाभ्यासियों ने देखा कि ब्रह्मादि सभी देवता श्री प्रभु जी की पूजा कर रहे हैं। बड़ा आश्चर्य हुआ यह देखकर। उस समय वहाँ एक वैष्णव महात्मा भी थे। उन्होंने तो कहा यह माया है चर्चा चलते–चलते श्री प्रभुजी तक पहुँच गई। श्री प्रभु जी आराम कुर्सी पर विराजमान थे। हमारे ध्यानाभ्यासी गुरु भाई–बहिन तथा अन्य जो वहाँ उपस्थित थे, प्रश्न करने लगे–प्रभु जी यह क्या बात है सभी देवी देवता आप की पूजा कर रहे थे ? इसी प्रकार की शंका एक बार अर्जुन को भी हुई थी। भगवान ने कहा– **'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्'** अर्थात् इस योग को सबसे पहले सूर्य को बताया था। सूर्य ने मनु को बताया और मनु ने इक्ष्वाकु राजा को बताया था। यह सुनकर अर्जुन के मन में शंका उत्पन्न हो गई और उसने भगवान से प्रश्न कर दिया –

अपर भवतो जन्म परं जन्म विवस्वत:।

कथं एतद्विजानीयाम त्वमादौ प्रोक्तावानिति ।।

भगवान ! आपका तो जन्म अभी हुआ है और सूर्य तो सृष्टि के आदि में हुये हैं। इस प्रकार से आपने उन्हें योग का उपदेश दिया यह मैं कैसे समझूँ ? भगवान ने इसका उत्तर देते हुए अर्जुन को समझाया।

' बहुनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ।।

अर्थात् हे अर्जुन ! मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन्हें मैं तो जानता हूँ किन्तु तुम नहीं जानते। इसी प्रकार से हमारे गुरु भाईयों को भी शंका हो गई कि सारे देवी देवता श्री प्रभु जी पर पुष्प वर्षा करके नमस्कार क्यों कर रहे हैं ? उस समय मैं भी वहीं था। गुरू भाईयों के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री प्रभु जी ने कहा– वे इसकी अपने शरीर की ओर संकेत कर पूजा नहीं कर रहे थे वे उसकी (ऊपर की ओर अंगुली उठाकर) पूजा कर रहे थे। कहने का अभिप्राय था कि शरीर का रूपक दूसरा और भीतर तत्व दूसरा। श्री प्रभुजी के अन्दर जो ब्रह्म तेज था उसी को वे नमन कर रहे थे। ' श्री मुल्खराज जी महाराज ने हरिद्वार कुंभ में ध्यान में महात्माओं के तेज को देखना शुरू कर दिया। किसी महात्मा का तेज हरिद्वार तक फैल रहा था – किसी का सहारनपुर तक फैला हुआ था – एक महात्मा का तेज सारे भारत में फैला हुआ दिखाई दिया – इसके बाद श्री मुल्खराज जी महाराज ने श्री प्रभु जी के तेज को देखना आरम्भ कर दिया। वह तेज सर्वत्र व्यापक हो रहा था। उन्होंने तेज की एक किरण को पकड़ कर उसके अन्त तक पहुँचने का प्रयास किया अनेक लोक–लोकान्तर पार कर गये किन्तु किरण का अन्त न पा सके। अन्त में श्री प्रभु जी ने हल्का सा थप्पड़ मारकर उठा दिया और कहने लगे हमसे ही उपाय पूछा और हमारी ही परीक्षा लेनी शुरु कर दी और परीक्षा भी ले न सके। यही सद्गुरू सत्ता है जो अखण्ड मण्डलाकार व्याप्त है।

साधक को अपनी साधना मूलाधार कमल से प्रारम्भ करनी चाहिये। ध्यान की उच्चावस्था में साधक का मन प्रकाश से परिपूर्ण हो जाता है उसी प्रकाश में सब देवताओं के दर्शन होने लगते हैं। भगवान ने अर्जुन को गीता युद्ध क्षेत्र में सुनाई युद्ध की समाप्ति के पश्चात अर्जुन ने पुनः भगवान के श्री मुख से वही गीता सुनने की इच्छा व्यक्त की। किन्तु भगवान ने इन्कार कर दिया कि वह गीता अब तुम्हें मैं नहीं सुना सकता क्योंकि मैंने योगमुक्त होकर तुम्हारे प्रति कहा था वह पर – ब्रह्म की वाणी थी। **' परं हि ब्रह्म कथितं योग युक्तेन तन्मया '** मनुष्य की आकृति में किसका व कितना प्रकाश विद्यमान है यह वही जान सकता है जिसे वह जनवा दे कठोउपनिषद् का वचन है –

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य: न मेध्या न बहुना श्रुतेन।

यमेवेष वृणुते तेनैव लभ्य: तस्येष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्।।

अर्थात् जिसको यह आत्मा स्वयं वरण कर ले उसे ही अपने स्वरूप को प्रदर्शित कर देता है।

इसलिये मनुष्य को पवित्र योग मार्ग का अवलम्बन लेना चाहिये। योग विद्या से बढ़कर

कोई विद्या नहीं है। अन्तर्जगत में प्रवेश योग से ही मिल सकता है। चंचल मन को एकाग्र करने के लिये भगवान ने गीता में अभ्यास और वैराग्य का उपदेश दिया है। वैराग्यवान व्यक्ति ही संयमी बन सकता है ' **असंयतात्मना: योगो दुष्प्राप इति** में इति यह भगवद्वचन है। जो आत्मवशी है, इन्द्रियों पर नियन्त्रण है वह ही योग में सफलता प्राप्त करता है। योग का अभ्यास करते–करते यदि योगी पथभ्रष्ट भी हो जाये तो भी सद्गति भाजन तो रहता ही है। पुन: मानव शरीर को पाकर साधना में लग जाता है।

स्वर्ग में पहुँचने के दो मार्ग हैं–एक है कर्मकाण्ड द्वारा अनेक यज्ञादि सम्पादन करके तथा दूसरा है योगाभ्यास से। जो कर्मकाण्ड से स्वर्ग को प्राप्त होते हैं उनके लिये प्राय: नियम रहता है तप से स्वर्ग और स्वर्ग से नरक। क्योंकि कर्मकाण्ड द्वारा स्वर्ग प्राप्ति होने पर वहाँ उसे दिव्य भोग प्राप्त होते हैं। पुण्य क्षीण हो जाने पर उसे फिर मर्त्य लोक में आना पड़ता है। यहाँ पर उसका मन भोगों की प्राप्ति में भटकता रहता है। फलत: नरक की ओर चला जाता है। किन्तु जो योगभ्रष्ट होकर स्वर्ग में जाते हैं इसके लिए यह नियम नहीं है। स्वर्ग में बहुत काल तक रहने के बाद भी मनुष्य जन्म मिलने पर फिर उन्हें योग की प्रतीति हो जाती है। इसी बात का संकेत भगवान ने गीता में किया है –

प्राप्य पुण्य कृत्तां लोकान् उषित्वा शाश्वती समा:।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते।।

अर्थात् योग भ्रष्ट साधक का जन्म पवित्र धनवानों के यहाँ होता है। वहाँ पर वह पौर्वदेहिक बुद्धि संयोग को पाकर इससे आगे बढ़ने में लग जाता है।

योग दर्शन में भी इसी बात की पुष्टि मिलती है। **'भव प्रप्ययो विदेह प्रकृति लयानाम्'**

जो विदेह तथा प्रकृतिलीन योगी है उन्हें भव प्रत्यय होता है। भव प्रत्यय का अर्थ है जन्म से ही ध्यान लगने लगता है। योगाभ्यास में स्वत: प्रवृत हो जाता है। प्रकृतिलीन योगी वह कहलाते हैं, जो योगी ध्यान करते–करते साधनावस्था में ही शरीर छोड़ देते हैं।

जैसे योगी ध्यानाभ्यास द्वारा गन्ध तन्मात्रा का साक्षात्कार करता है। तो उसका चित्त गन्धमय हो जाता है **गन्धोऽहम्** की अनुभूति उसको होने लगती है। इसी प्रकार से शब्द–स्पर्श, रूप रसादि में अपने चित्त को योगी लय कर देता है। यदि साधक इन्हीं अवस्थाओं में पहुँचा हुआ आत्मा ज्ञान समझ बैठे अथवा उसका शरीर पात हो जाये तो उसको पुन: शरीर धारण करना पड़ेगा। क्योंकि उसका चित्त साधिकार होता है– वह कृतकृत्य अभी नहीं हुआ है। ऐसे लोगों को जन्म से ही ध्यान की स्थिति प्राप्त होती है। वे भव प्रत्यय वाले योगी कहलाते हैं।

मैं एक दृष्टान्त देकर इस बात को स्पष्ट करता हूँ। कानपुर में मेरे प्रिय बच्चे सुरेश चन्द शर्मा B.I.C के M.D. थे। उनके घर पर हमारा योग प्रचार कार्यक्रम चल रहा था। सुरेशचन्द एक दिन लड़के को मेरे पास लाया और कहा– महाराज जी ! इस लड़के का बचपन से ही ध्यान लगता है यह किसी से दीक्षित भी नहीं है। उस लड़के से हमने पूछा–लल्ला–सारी बातें विस्तार से बताओ। उसने कहा–महाराज जी मुझे अपने पूर्व जन्म की सब बातें याद हैं। मैं पूर्वजन्म में खूब ध्यानाभ्यास किया करता था– मुझे अपनी पत्नी–बच्चे सभी याद हैं। इस जन्म में इस लड़के ने अपने पूर्वजन्म

के 36 वर्ष के लड़के की शादी अपने पैसे से कराई। इस जन्म मे लड़का खूब धनाढ्य परिवार में पैदा हुआ था।

एक बार यह लड़का हरिद्वार – ऋषिकेश गया वहाँ उसने एक भिखारी को पहचान लिया। वह उसका पूर्व जन्म का साथी था– इस लड़के ने उस भिखारी को काफी पैसे दिये और कहा – लो, ये पैसे। तू मेरे पिछले जन्म का साथी है। वह भिखारी आश्चर्य चकित होकर लड़के से कहने लगा–बाबू जी मैं आप का साथी कैसे हो सकता हूँ ? इस लड़के ने कहा–हम दोनों पिछले जन्म में साथी थे। मेरा अमुक नाम था और तेरा यह नाम था – हम दोनों गन्ने के खेत में गन्ने चूसने जाया करत थे। खेत में ही मैं ध्यानाभ्यास किया करता था। किन्तु मेरे कहने के बावजूद भी तुम कभी ध्यान में नही बैठे। भिखारी ने सारी बातों की पुष्टि की।

मैंने इस लड़के से पूछा–तुम्हारी मृत्यु कैसे हुई थी ? लड़के ने कहा– मुझे ध्यान में ही ज्ञान हो गया था कि इस दिन इतने बजे मेरी मृत्यु होगी " उस दिन मैं ध्यान में बैठ गया– ध्यान में ही मेरे प्राण निकल गये। कैसे प्राण निकले मुझे इसका भी ज्ञान नहीं हुआ। इस जन्म में मुझे पूर्व जन्म की सारी बाते याद आने लगी।

इसी प्रकार के और भी साधक जो सम्प्रज्ञात समाधि अवस्था में अथवा प्रकृति लीन दशा में शरीर छोड़ते हैं वह अगले जन्म में भव प्रत्यय वाले योगी होते हैं अर्थात् उन्हें ध्यान जन्म सिद्ध होता है।

मेरी इन बातों को मन में धारण करके अपने आप को पवित्र योग मार्ग में लगाओ। गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा– ' **त्रैगुण्य विषयाः वेदाः निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन** '। हे अर्जुन ! वेद त्रिगुण विषयक है। तुम इन तीनों गुणों से परे हो जाओ। गुणों से पार जाने का एक ही मार्ग है और वह है योग। निर्बीज समाधि में योगी निर्गुण अवस्था में पहुँच जाता है। उस समय वह ब्रह्मत्व में प्रतिष्ठित होता है। अतः तुम इसी परम पद के लिये प्रयत्नशील रहो। जो ऐसा प्रयत्न करेंगे श्री प्रभु जी की कृपा अवश्य होगी।

कर्माशस्य निर्माणे, देहो हेतुर्न जायते ।
न तथैवेन्द्रियाणि च, मनोवृत्तिस्तु हेतकः ।।
कर्माशयों को जन्म देने वाले शरीर और इन्द्रियाँ नहीं बल्कि मनोवृत्ति है।

श्री मद्वाल्मीकीय रामायण और योग

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

(गतांक से आगे)

श्री मद्वाल्मीकीय रामायण के अनुसार जब श्री रामचन्द्र जी वनवास को जाने को तैय्यार हुये तो माता कौशल्या से विदाई लेने के पश्चात सीता के पास पहुँचे और कहने लगे –सीते ! मुझे पिता जी ने चौदह वर्ष का वनवास दिया है और भरत को राज्य। पिता की आज्ञा को मानकर मैं वन को जा रहा हूँ। तुम यहीं रहकर मेरे माता–पिता की सेवा करो और देवार्चन व उपवास करती रहो। श्री राम के मुख से ऐसे वचन सुनकर धर्मपरायणा सीता बोली–प्राणनाथ ! आप ही मेरे जीवन के आधार हैं। संसार में स्त्री के लिये एकमात्र पति ही सब कुछ होता है अतः स्त्री को छाया की भाँति पति का अनुसरण करना चाहिये। मैं आपके बिना कहीं भी जीवित नहीं रह सकूँगी। वन के कठोर से कठोर कष्ट आप की कृपा से सह लूँगी। आपके साथ रहकर मेरा मंगल ही मंगल है। यदि आप मुझे अपने साथ नहीं ले जायेंगे तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। इस प्रकार सीता की दृढ़ प्रतिज्ञा को देखकर श्री राम सीता को अपने साथ ले जाने पर विवश हो जाते हैं। वह समय त्रेता युग का था। आज समय बदल गया है, मनुष्य की मानसिकता बदल चुकी है वह धर्म पथ से दूर हटता जा रहा है परिणामस्वरूप अशान्ति, द्वेष व कलह सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। आज माता–पिता अपनी कन्या को सद्शिक्षा नहीं देते। लड़के के परिवार वाले भी लोभी होकर दहेज की माँग कर बहू को प्रताड़ित कर नाना प्रकार के कष्ट देते हैं कभी–कभी हत्या भी कर देते हैं। कुछ लड़की के घर के लोग भी लड़की के उकसाने पर दहेज एक्ट जैसे कठोर धारा लगाकर लड़के वाले को अत्यन्त संकट में डाल देते हैं। सास यदि दहेज के विरुद्ध आवाज उठाकर बहू का साथ देने लगे तो बहुत सारे झगड़े उत्पन्न ही नहीं होगें। आज स्त्री ही स्त्री का दुश्मन बन रही है तभी झगड़े बढ़ रहे हैं यह हमारे हिन्दू समाज के लिये गंभीर समस्या बन चुकी है। अतः हमें अपने पूर्वजों के पद चिन्हों पर चलने का प्रयत्न करना चाहिये। शास्त्र को पढ़ने–पढ़ाने का एक मात्र उद्देश्य यह है कि मनुष्य अपने आचरण को सुधार ले। उसे राम और सीता की तरह आचरण करना चाहिये रावण की तरह नहीं – (सम्पादक)

माता कौशल्या से विदा लेने के पश्चात श्री रामचन्द्र जी विदाई लेने के लिये सीधे ही सीता के महल में गये। सीता को वनवास की सूचना अभी तक नहीं मिली थी। वह तो सोच रही थी कि राज्याभिषेक की तैय्यारी चल रही है। इस प्रकार से वे श्री राम के आने की प्रतीक्षा में बैठी हुई थी। श्री राम के वहाँ पहुँचने पर सीता खड़ी हो गई और चिन्ता से व्याकुल संतप्त इन्द्रियों वाले श्री राम के मुख को देखकर चिन्तित हुई। सीता ने पूछा – आज आपका राज्याभिषेक होना

है किन्तु आपका मुख मलिन हो रहा है ! मागध बन्दी और सूत आज मांगलिक वचनों द्वारा आप की स्तुति नहीं कर रहे हैं। ब्राह्मण वेद पाठ एवं स्वस्ति वाचन नहीं कर रहे हैं। मन्त्री, सेनापति व नगर के सेठ और जनपद के लोग आज आप के पीछे–पीछे नहीं चल रहे हैं। क्या कारण है ? आप के अभिषेक की तैय्यारी हो रही है और आप के मुख की कान्ति उड़ गयी है ऐसा कभी नही हुआ है। आप के चेहरे पर प्रसन्नता के चिन्ह नहीं दिखाई दे रहे है। इस प्रकार विलाप करती हुई सीता से श्री राम ने कहा–सीते ! मुझे पूज्य पिता जी आज वन को भेज रहे हैं. श्री राम ने विस्तार से वनवास की बात बताई। मेरे सत्यप्रतिज्ञ पिता महाराज दशरथ ने माता कैकयी को पहले कभी दो महान वर दिये थे। इस समय मेरे राज्याभिषेक के समय कैकयी ने महाराज को इन वरों को याद दिलाया। कैकयी के कहने पर पिता ने विवश होकर भरत को युवराज और मुझे चौदह वर्ष का दण्डकारण्य में वनवास दिया है। पिता की आज्ञानुसार मैं वन को जाने को तैय्यार हो चुका हूँ और तुमसे मिलने के लिये आया हूँ। श्री राम आगे कहने लगे – तुम भरत के सामने कभी मेरी प्रशंसा नहीं करना। अब भरत ही राजा हैं। तुम्हें उनके अनुसार चलना है। मैं आज ही वन को चला जाऊँगा। तुम धैर्य पूर्वक यहीं रहना। मेरे वन में चले जाने के बाद तुम्हें प्रायः व्रत और उपवा। में ही संलग्न रहना चाहिये। प्रतिदिन प्रातः उठकर देवताओं का विधिपूर्वक अर्चन पूजा करके, पिता दशरथ की वन्दना करनी चाहिये। मेरी माता कौशल्या भी मेरे वन गमन के समाचार से दुःखी है और दुर्बल हो रही है तुम्हें उनकी भी विशेष सेवा करनी चाहिये। भरत और शत्रुघ्न भी मुझे प्राणों से प्रिय हैं। उन दोनों को भी तुम्हें विशेषतः अपने भाई और पुत्र के समान समझना चाहिये –

भ्रातृपुत्रसमौ चापि दृष्टव्यौ च विशेषतः
त्वया भरत शत्रुघ्नो : प्राणे : प्रियतरो मम्।।

अब मैं वन को जा रहा हूँ। भामिनी ! तुम्हें यहीं निवास करना होगा। यही मेरी इच्छा समझो। इस पर सीता कहती है – " आर्य पुत्र ! जो कुछ आप कह रहे हैं ठीक है किन्तु पिता, माता, भाई, पुत्र और पुत्रवधु ये सब अपने पुण्यादि कर्मों का फल भोगते हुये अपने–अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जीवन निर्वाह करते हैं केवल पत्नी ही अपने पति के भाग्य का अनुसरण करती है, अतः आप के वन जाने के साथ ही मुझे भी वन जाने की आज्ञा मिल गई है। निम्न श्लोक देखें –

न पिता नात्मनो यात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणाम पतिरेको गतिः सदा ।।

नारियों के लिये इस लोक में तथा परलोक में एक मात्र पति ही सदा आश्रय देने वाला है। पिता, पुत्र, माता, सखियाँ तथा अपना यह शरीर भी उसका सच्चा सहायक नहीं है। रघुनन्दन ! मैं भी वन को अवश्य चलूँगी। मैं रास्ते के काँटे कुश आदि को हटाती चलूँगी। मैं जैसे अपने पिता के घर में रहती थी, उसी प्रकार से सुखपूर्वक वन में रहूँगी। तीनों लोकों के ऐश्वर्य

को भी कुछ न समझती हुई मैं सदा पति व्रत धर्म का चिन्तन करती हुई आपकी सेवा में लगी रहूँगी। मैं नियमपूर्वक रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करुँगी और तथा आप की सेवा में तत्पर रहकर आप के ही साथ मीठी-मीठी सुगन्ध से भरे हुये वनों में विचरण करुँगी जैसे आप वन में दूसरों की रक्षा करेंगे वैसे ही मेरी रक्षा करेंगे। अतः मैं भी अवश्य ही आप के साथ चलूँगी मुझे किसी भी तरह से रोका नहीं जा सकता है। मैं आप को कोई कष्ट नहीं दूँगी और सदा कन्द मूल खाकर निर्वाह करुँगी इसमें संदेह के लिये कोई स्थान नहीं है। आप के बिना यदि स्वर्ग का निवास भी मिले तो मुझे वह भी स्वीकार नही होगा। प्राणनाथ ! वन में जहाँ सहस्रों मृग, वानर, हाथी निवास करते हैं मैं अवश्य चलूँगी। आप के चरणों की सेवा करती हुई मैं उसी प्रकार सुख से रहूँगी जैसे अपने पिता के यहाँ रहती थी। हे राघव ! मेरे हृदय का सम्पूर्ण प्रेम, एक मात्र आपको अर्पित है। आप के सिवा मेरा मन और कहीं नहीं जाता। यदि आप से वियोग हुआ तो निश्चित ही मेरी मृत्यु हो जायेगी। इसलिये आप मुझे भी अपने साथ ले चलें। मेरे रहने से आप पर कोई भार नहीं होगा "। धर्म में अनुरक्त सीता के वन जाने की प्रबल इच्छा को समझकर श्री राम ने वन में होने वाले कठोर कष्टों को सोचकर ले जाने का विचार नहीं किया। श्री राम वन के दुःखों को गिनाते हुये कहते हैं – सीते ! वन में दुःख ही दुःख होता है पर्वतों के गिरने वाले झरनों के शब्द को सुनकर पर्वत खण्ड़ों में रहने वाले सिंह दहाड़ने लगते हैं वह गर्जना सुनने में बड़ा दुःख दायी होती है। सीते ! सूने वन में निर्भय होकर विचरण करने वाले तथा क्रीड़ा करने वाले मतवाले जंगली पशु मनुष्य को देखते हुये उन पर टूट पड़ते है, अतः वन दुःखों से व कष्टों से भरा हुआ है। वन के नदियों में ग्राह रहते हैं तथा हाथी घूमते रहते हैं उनसे मनुष्य सदा भयभीत रहता है। इसलिये वन में रहना बड़ा ही कष्टकारी होता है। सूखे पत्तों का बिछौना बनाकर उस पर सोना, कन्दमूल फल खाना तथा शक्ति के अनुसार उपवास करना, सिर पर जटा का भार ढोना तथा वल्कल वस्त्र धारण करना वहाँ की जीवन – शैली है। वनवासी को नियम पूर्वक दिन में तीन बार स्नान करना होता है अतः वन का वास बड़ा कष्टकारी है। प्रचण्ड आँधी, घोर अन्धकार, प्रतिदिन भूख का कष्ट तथा और भी बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं। इसलिये वन का रहना बहुत कष्टकारी है। वहाँ बिच्छू, कीड़े, डाँस मच्छर, सर्प आदि विषैले जानवर घूमते रहते हैं। वन में निवास करने वाले मनुष्य को और भी नाना प्रकार का कष्ट तथा भय का सामना करना होता है। वहाँ क्रोध व लोभ का त्याग करना होता है। इसलिये तुम्हारा वन में जाना ठीक नहीं है। इस प्रकार श्री राम ने सीता को वन में जाने से रोकना चाहा

(क्रमशः)

गुरु देव के संस्मरण

– जगदीश राए बंसल " अधम "

लेखनी तेरी लेख भी तेरा – तेरा ही गुण गान।
मैं तो धौंकनी लोहार की – सांस लेत बिन प्राण ।।

हम स्वयं को कितने भाग्य शाली मानते हैं, कि जगतात्मा त्रिजगपावन सद्गुरु देव भगवान ने हमको अपनी कृपा से सहज ही चरण शरण दे रखी है। मगर वे और भी उच्च श्रेणी के भाग्य शाली हैं, जिनको सिद्धों के सम्राट–दया सागर ने स्वयं उनके निवास स्थान पर पधार कर उन्हें दीक्षा देकर योग पथ का राहगीर बनाया। ऐसे ही एक उत्तम परिवार के मुखिया गाँव कुराना निवासी का नाम है श्री हर प्रसाद जी शर्मा (अध्यापक)। अपने योग प्रचार के प्रारम्भिक चरण में ही आराध्य गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सन् 1952–53 में गाँव कुराना में मास्टर जी के निवास स्थान पर पधारे थे। यहाँ गाँव से लगते, 'भन्डू का बाग' नामक स्थान पर दिन भर योग प्रचार के लम्बे–लम्बे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाने लगा। इसी अवधि में भाग्य विधाता जी ने मास्टर जी को त्राटक सिद्ध कराया था। परिणाम स्वरूप आदरणीय मास्टर जी घोर अन्धकार में स्पष्ट देख लेते थे और काली रात्री में भी सूई में धागा डाल लेते थे। मास्टर जी की जीवन ज्योति नब्बे वर्ष की आयु में, इन शब्दों के साथ कि अच्छा डा. साहिब हम चलते हैं, " हरी ओउम् .... " गुरु देव की ज्योति में समाहित हो गई।

मुझे कुराना नाम याद आते ही, कई यादें मन में उछलने लगती हैं जो आपको भी याद दिलाता चलूं कि कुराना गाँव अपने आराध्य देव गुरु श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की जन्मभूमि अलुपुर से लगता चार कि. मी. की दूरी पर स्थित है। जब गुरुदेव जी यहाँ सायंकालीन आरती एवं प्रवचन करते थे तो यहाँ अखिलात्मा त्रिजग पावन बाँके बिहारी के बृज जैसी योगिक बन्शी बजती थी। अपने श्री मुख से गुरुदेव भगवान बतलाया करते थे कि कुराना संकीर्तन का दिव्य प्रभाव केवल मनुष्यों पर ही नहीं अपितु पशुओं पर भी देखने को मिलता था। आरती के समय जब **" प्रभो पाहि आपन्न मामीश शम्भो "** जोर–जोर से देर तक चलता था तो मनुष्यों के साथ – साथ पशु भी ध्यानस्थ हो जाते थे। एक सायं गाँव का एक किसान गुरुदेव जी महाराज के पास आकर प्रार्थना करने लगा कि आप यह नमामी शंम्भो......... ना कहा करें। इससे मेरी बहुत हानि होती है। यह ध्वनि सुन कर मेरे कोल्हू का बैल स्थिर खड़ा हो जाता है। आँखें उपर चढ़ा लेता है। मेरे कहने पर भी टस से मस नहीं होता और काम रुक जाता है। अस्तु सत्संग की इस परम्परा को स्थानीय गुरु भाई बहिन आज भी निभाए हुए हैं। शिव मन्दिर के साथ एक कमरे में जगत नियन्ता महा प्रभु श्री राम लाल जी महाराज एवं प्रातः स्मरणीय अनन्त योग योगेश्वर

गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के स्वरूपों की नित्य दोनों समय आदरणीय गुरुभाई एवं पुजारी श्री सुभाष तिवारी जी द्वारा आरती पूजा की जाती है। इसके साथ लगते कमरे में एक गुप्त गुफा है। सत्संग के वार्षिक उत्सव को भाग्य विधाता पूज्य पाद गुरु देव महाराज के कृपा पात्र एवं परम पुज्य आ.ब्र. श्री दास लाल जी महाराज की अध्यक्षता में आज भी गुरु भाई–बहिन निभाए हुए हैं। इस अवधि में जब – जब मुझे शामिल होने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है तब–तब मैंने देखा है कि कुराना के आदरणीय भाई बहिनों का अद्भुत प्यार आगन्तुकों का ह्रदय स्पृष्य करने से नहीं चूकता है। अस्तु।

श्री हर प्रसाद शर्मा के सुपुत्रों श्री रामेश्वर दत्त, श्री कृष्ण दत्त एवं श्री विष्णुदत्त के परिवारों पर काल चक्र, युग चक्र और जगचक्र को एक साथ चलाने वाले गुरूदेव की कृपा के इतने अमृत सरोवर बरसते रहे हैं कि भाई जनों की झोली ही छोटी पड़ गई। जिस प्रकार नवजात शिशु को अपनी माँ की गन्ध आती है, उसी प्रकार इस परिवार को गुरु तत्व की गन्धआने लगी थी। आदरणीय गुरु भाई श्री विष्णु दत्त शर्मा ने बताया कि गुरु देव के चलते कार्यक्रम फन्दू के बाग में भ्राता श्री रामेश्वर ने एक जिज्ञासा व्यक्त की :–

माँ की एक दूआ जिन्दगी बना देती है,
खुद रो कर भी हमें हँसा देती है,
कभी भूल कर भी माँ को मत भुलाना,
एक छोटी सी भूल–धरती हिला देती है।।

कि गुरू जी मेरी माँ को गए कई साल हो गए। उसको देखने का मन करता है। घर में कोई फोटो भी नहीं कि उसे ही देख लू। कृपा करके मेरी माँ का दर्शन करा दीजिए। रामेश्वर को गुरू जी प्यार से रमेश कुराना भी पुकार लेते थे। बोले, लल्ला रमेश तू अपनी माँ के दर्शन करना चाहता है तो ध्यान में बैठ जा और दर्शन कर ले। लीला धारी दया सागर ने उसके सिर पर कृपा का हाथ रखा और भ्राता श्री ने अपना आसन जमा लिया।

ध्यान धारणा जब समाधी हो गया।
रोम रोम तब ध्यानास्थ हो गया।।

भ्राता श्री के ध्यान में बैठते ही, अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक महा प्रभू श्री रामलाल जी महाराज ध्यान में आ पधारे, बोले–लल्ला तू अपनी माँ के दर्शन करना चाहता है ? आ, चल मेरे साथ। अब सर्व समर्थ्य दादा गुरू जी उसे अपने साथ ऊपर को ले उड़े। ऊपर एक दिव्य पार्क जैसा आया। वहाँ प्रभू जी रुक गए। दिव्य पार्क में हरी–हरी घास, लचीली, सुगन्धित और सुहावनी थी। उपवन में भाँति–भाँति के मन भावने वृक्ष अद्भुत फलों से लदे हुए थे। प्रभू जी ने संकेत किया कि लल्ला वो सामने तुम्हारी माँ बैठी है, जाओ दर्शन करके यहीं लौट आना। मैं आगे बढ़ा। घास ऐसी थी कि चलता ही जाऊँ........। मेरी माँ एक तख्त पर, सफेद साड़ी पहने

बैठी थी। सामने लकड़ी की घोड़ी (पुस्तक स्टैन्ड) पर पुस्तक रखी थी। घास पर कई माताएँ बैठी थी। मेरी माँ अंगुलियों से उन्हें कुछ समझा रही थी।

डाल—डाल पर बैठे पक्षी—गीत खुशी के गाते हैं।

फूल—फूल पर बैठी तितली—भाग्य पर इठलाती हैं।।

मैं कुछ आगे तक जा कर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। मेरी माँ ने जैसे ही मुझे देखा, वह मेरे पास आ गई। बोली—रामेश्वर तू यहाँ ? बोलो कैसे आया ? मैंने विनम्र प्रणाम किया, बोला, माँ आपका दर्शन करने का मन करता था, इसलिए चला आया। माँ बोली, मैं यहाँ आनन्द में हूँ। तुझे यहाँ प्रभू जी लाए होंगे ? सुनो— ये जो यहाँ तक लाए हैं और जिन्होंने तुझे यहाँ भेजा है, ये दोनों साक्षात भगवान हैं। इनकी जितनी सेवा हो जाए, कम है। अब तुम जाओ और भूख लगी हो तो ये फल लगे हैं, तोड़ कर खा लो। मैं पुनः प्रणाम कर महाप्रभू जी के पास लौट आया। प्रभू जी बोले, लल्ला ! अब कोई और इच्छा है या नीचे लौट चलें ? मैं करबद्ध मुस्करा दिया और प्रभु जी नीचे ले आए। हम जैसे ही पृथ्वी पर लौटे घट—घट पट—पट के ज्ञाता गुरु देव भगवान ने सिर पर हाथ रखा और मुझे ध्यान से उठा दिया।

अगर जहाँ में ऐसा सद्‌गुरु ना होता।

तो जीवन में कोई काम शुरू ना होता।।

उन्हीं दिनों का एक कृपा प्रसंग मेरे मंझले भ्राता कृष्ण दत्त से सम्बन्धित है। कृष्ण दत्त को गुरू जी प्यार से किनमिन पुकार लिया करते थे। एक दिन सर्वसिद्ध योगाधिपति गुरू देव भगवान अपनी मन्द—मन्द मुस्कान से आशीर्वात्मक मुद्रा में कृष्ण दत्त को प्रसाद देते समय बोले, लल्ला किन मिन तू ध्यान में बैठ जा। भ्राता श्री ने गुरू आज्ञा शिरोधार्य कर दण्डवत प्रणाम किया। गुरुदेव जी ने अपना वरद हस्त उसके सिर पर रखा और उसने बाहर एकान्त में अपना आसन जमा लिया।

मिले हों धर्मराज ही जिन्हें—गुरू रूप में।

गिर नहीं सकता वो — विकारों के कूप में।।

त्रिकालदर्शी जी की ऊँचाईयों को कौन जान सकता है ? उधर भ्राता श्री ध्यान में बैठ गए, इधर विधाता जी के हितोपदेशों से साधक मस्त हो गए। एक अन्तराल पश्चात गुरुदेव बोले चलो किनमिन को ध्यान से उठा लाते हैं। आश्चर्य महान आश्चर्य ! बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही है। मगर किनमिन महाराज के पाँच — छः फुट गोला कार में एक बून्द का भी नामो निशान नहीं। दयासागर ने शर्मा जी के सिर पर हाथ रखा और शर्मा जी ने आँखें खोल दी तथा तत्काल श्री चरणों में लिपट गया। फिर कुछ गुन गुनाया कि :—

ध्यानी बन कर ध्यान करे, साधन करे हजार।

श्री सद्‌गुरु कृपा बिना, सब कुछ है बेकार।।

गुरू जी ने पूछा कि लल्ला तुमने ध्यान में क्या देखा ? शर्मा जी बोले गुरू जी आपने मुझे जल्दी उठा दिया। अब क्या बताऊँ, क्या नहीं बताऊँ ? इन्द्रदेव गोकुल वासियों से नाराज हो गए। गोकुल डूबोने के लिए पानी–पानी कर दिया। भगवान श्री कृष्ण ने अपने नख पर श्री गोवर्धन पर्वत को उठा लिया। सब बृज नर नारी एवं गौधन पर्वत राज के नीचे आ गया। मैं भी वहीं खड़ा हो गया। जब वर्षा रुकी तो कान्हा जी ने पर्वत वहीं विराजमान कर दिया। गोप गोपी कन्हैया से पूछ रहे थे, कान्हा तू छोटो सो है, इतनो बड़ो पर्वत कैसो उठायो ? कान्हा ने कहा :–

कछु माखन बल बढ़ो – कछु गोपन करी सहाय।
कछु कृपा श्री राधा करी – गोवर्धन लियो उठाय।।

फिर मैं गौधाम चला गया। इसी मध्य लीला धारी ने अपनी लीला समेट ली, मुझे उठा दिया। असल बात तो यह है :–

राम कहूँ या कृष्ण कहूँ या कह दूँ कलि अवतार तुझे।
यों धोती कुर्ते में रूप छिपाए – समझ न आई बात मुझे।।

महा प्रलय में जीव न विचरता है और न ईश्वर में मिल जाता है। रात्रि आने पर जैसे सब सो जाते हैं, वैसे ही सारे जीव अचेत अवस्था में चले जाते हैं।

जीवन में समर्पण का महत्व

अनुवादक:– डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी
(अ.प्रा.) विभागाध्यक्ष–मनोविज्ञान
राज. उ.शि.– उ.प्र.

ले. स्वामी सुबोधानन्द
(अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक गुरु)

प्रभु/गुरू के प्रति समर्पण भाव बुद्धिमत्ता का प्रतीक है और हमेशा शिकायत करते रहना मूर्खता का द्योतक है। इससे व्यक्तित्व में उत्तरदायित्व बोध उत्पन्न होता है। सामान्य व्यक्ति जिम्मेदारी तो ले लेता है परन्तु उत्तरदायित्व बोध से बचता है। बाद में इस कमी के अनुभव होने पर उसे निराशा होती है। निराशा को गले न लगाकर विस्मरण करना ही श्रेयष्कर है क्यों कि निराशा परपीड़न सुख के रूप में प्रकट होती है। निराशा को दफन करने के लिए समर्पण बहुत ही सहायक होता है (अनुवादक के शब्दों में – हम लोग हरिइच्छा, प्रभू इच्छा मानकर कष्टों को सहर्ष स्वीकार कर समर्पण भाव, निराशा से मुक्ति पाते हैं।) किसी भी व्यक्ति की गाड़ी जीवन भर अच्छे मार्ग पर नहीं चलती, उसमें सदैव अवरोधक (स्पीड ब्रेकर) आते हैं, अथवा गाड़ी पंचर हो जाती है परन्तु प्रभू / गुरू कृपा से नैया पार हो जाती है।

समर्पण भाव चिपकना नहीं है बल्कि तादात्म्य है। उदाहरण के लिए यदि आप अपने शब्दों का आदर करते हैं और वादा पूरा करने में असफल होते हैं तो आपका " मैं " (लोअर सैल्फ) आपको अपनी असफलता का औचित्य सिद्ध करने के लिए प्रेरित करेगा (इसे मनोविज्ञान की भाषा में युक्ति करण रेशनलाइजेशन कहते हैं जो अचेतन रूप से होता है) परन्तु यदि आप अपने पराहम (हायर सैल्फ) का अनुसरण करते रहें तो थोड़े समय के बाद लोअर सैल्फ का हायर सैल्फ में विलय हो जायेगा। यही स्थिति तादात्म्य है और तादात्म्य ही समर्पण है जिसके बिना जीवन उथला है। हमारे अंदर विचार और क्रियाशीलता दोनों गुण हैं जब हम हर समय लेटे रहते हैं तो हमारे जीवन का चिंतक पक्ष हमें चेतावनी देता है और क्रियापक्ष हमसे हर समय आलस्य में पड़े रहने को बन्द करने का आदेश देता है। इस प्रकार आलस्य और चेतावनी दोनों के साथ जीने की स्थिति ऐसे रथ की सवारी है जो दो विपरीत दिशाओं में दौड़ रहे हों। समर्पण भाव से यह स्थिति समाप्त होकर लक्ष्य की तादात्म्यता प्राप्त होती है।

जीवन में कठिनाइयां दैवीय सर्जरी हैं जो आपरेशन के माध्यम से विषाक्त पदार्थ दूर करती हैं क्योंकि प्रकृति हमसे चाहती है कि हम नई और अपेक्षाकृत चतुरता जिंदगी की उड़ान में शामिल करें। जीवन के सभी क्षेत्रों में ऐसा ही समर्पण भाव लावें। जीवन में विशिष्टता और श्रेष्ठता तब आती है जब आगे बढ़ने और समाज के लिए योगदान से लगाव हो, स्नेह हो। भावना की अपेक्षा विचारों को अधिक प्रधानता देने से रचनात्मकता (क्रीएटिविटी) पैदा होती है। रचनात्मकता सद्इच्छा से उत्पन्न होती है। सद्इच्छा अच्छे बीज को बोने की भांति है ; इसे

पलने दीजिए–बढ़ने दीजिए।

समर्पण भाव से भ्रम दूर होते हैं। चूँकि हम दुनिया को अपने पूर्व विचारों वाले (पूर्वाग्रह युक्त–चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक) मन से देखते हैं अत: शुद्धप्रत्यक्षीकरण की अपेक्षा भ्रम उत्पन्न होता है। आत्मजाग्रति भ्रम निवारण करती है जिससे निम्नस्तरीय आत्म (सैल्फ) उच्च स्तर को प्राप्त करता है। बिना " मैं " की जाग्रति हायर सैल्फ कहलाती है। समर्पण भाव से जीवन के सभी क्षेत्रों में संतुलन भी आता है। एक अच्छा आध्यात्मिक शिक्षक परामर्श देता है कि आपके जीवन में यह न हो और मैं यही न सोचता रहूँ–

1. कि मुझे हाईस्कूल में उच्च श्रेणी मिले ।

2. फिर अच्छा कालेज मिले।

3. फिर अच्छी नौकरी मिले ।

4. फिर पत्नी बच्चों के लिए सोचते रहें।

5. फिर बच्चों के बच्चों के लिए हाय हाय और फिर,

6. रिटायरमेंट आदि। इस क्रम से हटकर गुरु कृपा से मुझे अन्तर्दृष्टि मिलती है कि मैं सच्चा जीवन भूल गया था।

मनोनिग्रह का अभ्यास

गीता की यह शिक्षा कि सच्चा सन्यास आसक्ति रहित कर्म में है, संसार का त्याग करने में नहीं, कोई ऐसी उपपत्ति नहीं है, जिसे संसार का त्याग करने के अनिच्छुक लोगों के समर्थन अथवा सफाई के लिए प्रस्तुत किया गया हो। वह मनुष्यों के जीवन को प्रत्यक्षत: गढ़ने के लिए आधार के रूप में प्रतिपादित की गई है, जिससे कि उनमें नि:स्वार्थता और अलिप्तता की आदत तथा स्फूर्ति विकसित हो। बत्तख पानी में तैरती है, परन्तु बाहर निकलने पर अपने शरीर का सब पानी झाड़ देती है। हमें उसी के समान संसार में रहना सीखना चाहिए। हमारे काम में दक्षता, सुधारता और कुशलता का अभाव न हो और फिर भी हम स्वार्थपूर्ण आसक्ति को विकसित न होने देने के लिए सतर्क रहें। अलिप्तता का यह भाव कायम रखने के लिए मनोनिग्रह का सतत् अभ्यास आवश्यक है।

श्री रामलाल प्रभवे नमः   श्री सद्गुरु परब्रह्मणे नमः

नव वर्ष मंगलमय हो

– सम्पादक की लेखनी से

सन् 2014 वर्ष बीत गया। जीवन के मृदु व कटु अनुभव मन में लिये, हम लोग शुभफल की आकाँक्षा लिये नववर्ष के पदार्पण का स्वागत कर रहे हैं। जीवन में मनुष्य हर क्षण कुछ न कुछ नया सीखता है। मनुष्य चमत्कार का लोभी होता है किन्तु कभी विचार नहीं आता कि चौरासी लाख प्राणियों में मेरी क्या स्थिति है। ईश्वर ने मानव में विवेक दे दिया है जो मानव के लिये ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट देन है। दूसरे प्राणियों की दृष्टि से देखे तो सचमुच मानव का जीवन चमत्कार से कम नहीं है। ईश्वर ने मनुष्य को क्रिया शक्ति, ज्ञान शक्ति तथा इच्छा शक्ति तीनों ही प्रदान की हैं। इस कारण से मनुष्य सर्वतोमुखी उपलब्धियों से सम्पन्न रहता है। शुभ–अशुभ कर्म के लिये मनुष्य स्वतन्त्र है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार ' स्वतन्त्रः कर्ता ' कर्ता स्वतन्त्र होता है इस कारण से भगवान् ने गीता में कह दिया है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मनुष्य कर्म करने के लिये स्वतन्त्र है किन्तु फल के लिये स्वतन्त्र नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि हम पाप कर्म करें किन्तु इसका फल पुण्य के रूप में मिले, ऐसा नहीं होता। इसलिये महापुरुष कहा करते हैं मनुष्य पाप करते हुये पुण्य फल की इच्छा करता है किन्तु ऐसा विधान में नहीं होता। अस्तु।

विचार शक्ति परमात्मा की अमूल्य देन है। इस शक्ति का सकारात्मक लक्ष्य के लिये प्रयोग करें विनाशात्मक लक्ष्य के लिये नहीं। योग विद्या हमें सकारात्मक लक्ष्य की ओर ले जाती है इसलिये इसे सुन्दर- आभूषण की भाँति शरीर में धारण करना चाहिये। यही मनुष्य को पशु से नर तथा फिर नारायण बना देने वाली विद्या है। अतः इसको ग्रहण कर हम अपना सर्वांगीण विकास करें।

नववर्ष सभी के लिये सुखदायी और मंगलमय हो, यही कामना है।

शुभम् भूयात्

गुंजन

– डॉ. विजय सिंह

जगत में असंख्य प्राणी हैं। जिसमें मनुष्य श्रेष्ठ प्राणी है जो अपने परम कल्याण रूप मोक्ष प्राप्त करने हेतु चेष्टा कर सकता है। इस आशय वाले जो संसार से मुक्ति चाहते हैं, वे विरले होते हैं। संत पुरुष ही वास्तव में सर्व तीर्थ मय तथा सर्व देव मय हैं। हर काल के संतों सिद्धों की वाणियों, उपदेशों, काव्यों में उस परम स्फोट रूपी गुंजन गुंजायमान है जिसके अवगाहन से सामान्य मनुष्य में भी कुछ मात्रा में वहीं स्पन्दन, वही अन्तर त्वरा प्रगट होकर मन को बाह्य से (ऐन्द्रिक ऐषणाओं) अन्तःकरण में व्याप्त शांति, की ओर ले जाता है।

संत मत में सदगुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊँचा बताया गया है। शिष्य को चाहिए कि सदगुरु के समीप छल–छिद्र छोड़ कर विनम्रता पूर्वक जाये। उनको प्रसन्न करने के लिए उनकी निष्काम सेवा करे। उनके पूछने पर अपना मन खोल कर राख दे यही गुरु–भक्ति है। शिष्यों में सचेतात्मक उपदेश रूपी गुंजन श्री कबीर जी के दोहों में देखें –

दासार तन हिरदै नहीं, नाम धरावै दास ।
पानी तज गह ओस को, कैसे मिटे पियास ।।
दासतन हिरदै बसै, गुरु चरनन आधीन ।
कहैं कबीर वह शिष्य है, प्रेम प्रीति लवलीन ।।
फल कारण सेवा करे, तजे न मन के काम ।
कहैं कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ।।
सेवा फल माँगे नहीं, सेवा करे दिन रात।
कहैं कबीर उस शिष्य पर, काल करे नहिं घात ।।
सब कुछ गुरु के पास है, पाइये अपने भाग ।
सेवक मन का प्यार है, रहे चरण में लाग ।।

कबीर दास के उपरोक्त दोहे में शिष्य एवं उसका सदगुरु चरणों में रहना

कैसा हो, यह बताते हुये शिष्य के अन्तःकरण की शुद्धता पर बल दे रहे हैं। वे तो कहते हैं तू केवल गुरु का हो रहे। तुम्हारे लौकिक एवं पारलौकिक सब कार्य देखना, स्वतः सिद्ध हो जायेंगें।

गुरु की आज्ञा मान ले, सब कारज सिधि होय।
अमर अभय पद पाइये, काल न व्यापे सोय ।।
तू तू करे तो निकट होय, दुर–दुर करे तो जाय।
ज्यों गुरु राखे त्यों रहे, जो देवे सो खाय ।।

संत सिद्ध सदगुरु के चरणों से भुक्ति–मुक्ति, अमरत्व–अजरत्व सब मिलता है। कोई शिष्य के मन में सदगुरु सामिष्य से आनन्द प्राप्त न हो तो उसे समझना एवं सावधान होना चाहिए कि उसके अन्दर कोई बड़ा खोट है। परम पुरुषार्थ रुप समाधि साधक के तमस, रजस, सत्व अहंकार का विलयीकरण है। इस अहं को सदगुरु भिन्न–भिन्न तरीके से तोड़ते हैं तब शिष्य के अन्तः में अमृत–तुल्य–नाद का गुंजन प्रकट होता है जिसके मस्ती में डूबा, सरगुरु सेवा परायण रहता, उसकी अन्तः साधना दिन–दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जाती है। इसके बिना इस कलिकाल में शिष्य का उद्धार सम्भव नहीं है।

बीतरागी पुरुषों (सदगुरु तत्व) को ही लक्ष्य बनाकर शिष्य अपने आचरण एवं मनः एकाग्रता की ओर अग्रसर हो तो उसे अपने अन्तःकरण में ही उस परमधाम का भेद सदगुरु कृपा से मिलता है। हाँ ! इस मार्ग में साधक–शिष्य को अपना पदाभिमान, जाति अभिमान सब सदगुरु चरणों में समर्पित करना होगा तभी स्वतः अन्तः स्फुरणा जागृत नाद, ज्योति, कला के रूप में अनुभूति में आयेगा। आध्यात्म पथिक का रहनी करनी संसारियों से भिन्न एवं उनके समझ से परे होना चाहिये। दम्भ, अहं साधना के सोपान को ध्वस्त करने वाले व पतन कराने के कारक हैं। श्री सदगुरु जिस शिष्य पर प्रसन्न होते हैं उसका आध्यात्मिक लक्ष्य जो अनेक जन्मों में साधना करते हुये प्राप्त होता, वह तत्काल सदगुरु कृपा से उसे उपलब्ध हो जाता है। सचेतक महात्मा कबीर " मसि कागज छुओ नहीं " " मैं कहता आँखन की देखी, और कहें कागद की लेखी" ने अपने दोहों, साखियों, भजनावलियों में अपने अन्तः गुंजन को बैखरी रूप देकर कहा है –

गुरु नाम है गम्य का, शिष्य–सीख ले सोय।
बिन पद बिन मरजाद नर होय शिष्य नहीं कोय ।।
घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु चतुर सुजान ।
पाँच शब्द धुनकार धुनि, बाजै शब्द निशान ।।
नादी बन्दी बहु मिलें, करत कलेजे छेद ।
कोई तख्त तले का ना मिला, जासूँ पूँछूँ भेद ।।
मंझ महल की गुरु कहैं, जिन देखा घर बार ।
कुंजी दीनी हाथ धर, पर्दा दिया उघार ।।

पंच कोषों से घिरा वह आत्म–परमात्म तत्व को अपने पुरुषार्थ से इस कठिन कलिकाल में अन्वेषण करना असम्भव कार्य है। श्री सदगुरु इन पंच–कोषों के भेद को खोलने हेतु वह सरल साधन एवं कृपा शक्ति अपने समर्पित शिष्य को देते हैं, जिससे वह उन साधनों के द्वारा क्रमशः अन्नमय कोष पर विजय करके, प्राणमय कोष की ओर अग्रसर होता है। प्राण शोधन से सूक्ष्म प्राण और इसके द्वारा विश्वात्मक प्राण से जुटते ही साधक को अनेक शक्ति–सिद्धियों का साक्षात्कार होने लगता है। सदगुरु सरणापन्न साधक ही इन करामाती सिद्धियों एवं सूक्ष्म ऐन्द्रिक सिद्धियों में न फँसता हुआ अपने परम लक्ष्य की ओर विरक्त भाव से बढ़ता रहता है। आगे मनश्चक्र (मनोमय कोष) में जन्म–जन्मान्तरों के कर्म बीजों का अंधड़ में पड़कर सुस्थिर मन वाला साधक भी घबरा उठता है। इस कोष को पार पाना बिना सदगुरु कृपा के सम्भव आज के समय में नहीं है। कितने साधक यहीं डूबते–उतराते रहते हैं। एकाग्र मन संस्कार बीजों को खींच–खींच कर ध्यान, स्वप्न के माध्यम से नष्ट करता जाता है। जो इसके पार पहुँचा सदगुरु कृपा–दृष्टि के फलस्वरुप वह विज्ञान मय कोष में पहुँच कर कृत–कृत्य होने जैसा सुस्थिर बुद्धि प्राप्त कर एक प्रकार की शांति अनुभव करता है। पुरुषार्थ एवं वैराग्य की ज्वाला में अब साधक के कर्माशय बीज रहित हो चुके हैं। एकाध बीज ही शेष है अतः उसे आनन्द मय कोष की उपलब्धि से महान आनन्द का सागर अन्तःकरण में उमड़ता हर समय अनुभव होने लगता है। इस अवस्था में भव–सागर जो दुःखों का माया द्वारा सृजन है वह सूख जाता है। कहने का तात्पर्य यह कि जो

आनन्द–सागर में मस्त है उसका भव–सागर सूख जाता है। उसका अवस्थान ही नष्ट हो गया होता है। ऐसी ही आनन्दानुगत भाव में कृतः कृत्य अनुभव करती हुई श्रीमती मीरा बाई ने अपने अन्तः गुंजन को बैरवर रूप में गाया है –

मोहे लागी लगन गुरु चरणनन की ।
चरण बिना कछुवै नहिं भावै जगमाया सब सपनन की ।।
भव सागर सब सूख गयो है फिकर नहीं मोहे तरनन की ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर आस वही गुरु–सरनन की ।।

उपरोक्त वर्णित कोषों में तम, रज, सत का अधिष्ठान कैसा है थोड़ा उसपर हमें चिंतन कर लेना चाहिये। अन्नमय कोष में तम की प्रधानता रहा करती है अतः स्थूल शरीर में बहुधा कष्ट ही कष्ट रहा करता है यदि कोई व्यक्ति इस कोष की साधना में ही जीवन समाप्त करता है तो उसे कर्मानुसार मनुष्य, पशु–पक्षी आदि का जन्म मिला करता है । जो प्राणमय कोषों में पहुँच गया है उसे सुख, दुःख दोनों बराबरी से अनुभव में अस्थिरता से आते रहते हैं यहाँ रजो गुण का बाहुल्य है। प्राण ही क्रिया शक्ति है। साधना च्युत हुये प्राणी में सतो प्रधानता यदि हुई तो पृत्तियोनि और यदि वासना बहुलता में रजोगुण के साथ तमों गुण का मिश्रण रहा तो प्रेत योनि प्राप्त होता है। इनमें स्थूल कोष (अन्नमय) से भी अधिक वासना का प्रबल प्रवाह रहा करता है। मनोमय में प्रतिष्ठा सत्व के साथ रजोगुण के प्रभाव में होने के कारण साधना च्युत होने पर देव योनि में जीव जाकर भोगों को भोगता है। अतः इन सब झंझावातों से बचाने वाले श्री सदगुरु चरण शरण को ही एक मात्र आश्रय बना लेना चाहिये।

महात्मा कबीर की गुंजन को विवेक पूर्वक अपने अन्तःकरण का स्पंदन बनाने पर अध्यात्म जगत दुरुह नहीं होगा –

बस्तु कहीं, ढूँढ़े कहीं, किहि विधि आवै हाथ ।
कहैं कबीर तब पाइये, जब सदगुरु लीजै साथ ।।
भेदी लीन्हा साथ कर, दीनी वस्तु लखाय ।
कोटि जन्म का पन्थ था, पल में पहुँचा जाय ।।
भेदी जाने सर्वगुण, अनभेदी क्या जान ।

कै जाने गुरु पारखी, कै जिन लागा वान ।।
निह वैरी निह कामता, स्वामी सेती नेह ।
विषयों से न्यारा रहै, साधो का मत एह ।।
जौन चाल संसार की, तौन साध की नाहिं ।
दम्भ चाल करनी करे, साध कहो मत ताहि ।।
ज्यो पय मध्ये घीव है, त्यो रमिया सब ठौर ।
कथता–बकता बहुत हैं, मथ काढ़े ते और ।।
अलख पुरुष की आरसी, साधू की ही देह ।
लखा जो चाहे अलख को, इनमें ही लख लेह ।।

मातृवत् परदारंश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ।।

– चाणक्य नीति

जो व्यक्ति पर–स्त्री को माता के समान,पराये धन को मिट्टी के समान और समस्त प्राणियों के प्रति आत्मीय भाव कर उनकी आत्मा के समान देखता है, वस्तुतः वही ठीक से देखता है।

ताड़ासन

विधि – समकाय शिरोग्रीव होकर बिल्कुल सीधे एक स्तर में खड़े हो जाइये, शिर, ग्रीवा, नितम्ब भाग एवं कमर के ऊपर का पीठ का हिस्सा बिल्कुल एक सूत्र बद्ध से हों जिस प्रकार ताड़ या खजूर का वृक्ष होता है। पहिले–पहिले अभ्यास में समसूत्रता लाने के लिए किसी दीवार या सीधे खड़े हुए स्तम्भ का भी अवलम्बन लिया जा सकता है। उसके बाद कुछ दिन अनवरत अभ्यास करने पर अपने आप ही समस्थिति में खड़े होने का अभ्यास पड़ जायेगा। ऐसे सीधे खड़े हो जाने के बाद अपनी एक भुजा को (दाहिनी या बाई को) सावधानी से उठाकर अपने कन्धे के बराबर ले जाकर फैला दें। जिस भुजा को फैलाओ वह पूरी–पूरी तनाव में रहनी चाहिए व साथ ही दूसरी भुजा शरीर के साथ नीचे की ओर शरीर से बिल्कुल सटी रहे। ज्यों ही बन्धों के बराबर ले जाकर अपनी भुजा को फैलाओ त्यों ही साथ–साथ अपने पैरों की एड़ियों को धीरे से ऊपर की ओर उठाकर केवल पैरों के पंजों पर खड़े रहें, कन्धे के बराबर फैलाये हुये हाथ की मुट्ठियाँ

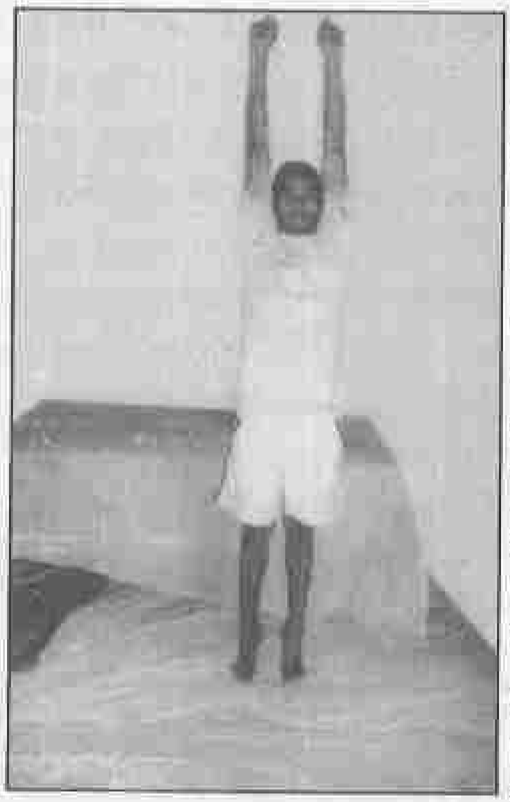

एक या दो बार बाँध लें व खोल दें–ऐसा करने के बाद अपनी कन्धे के बराबर फैलाई हुई भुजा को शिर के बराबर ऊपर को ले जायें व तनाव से ऊपर की ओर उस हरकत से बढ़ाते रहें जैसे कोई फल तोड़ने को बढ़ाते हैं। उधर नीचे पैरों की

एड़ियों को पूरी–पूरी ऊपर की ओर उठा दें। ऊपर बढ़े हाथ की मुट्ठियाँ पूर्ववत एक या दो बार खोलते व बाँधते रहें। मुट्ठी बाँधना व खोलना दो एक बार ही करें। लम्बा समय न लगायें। फिर सावधानी के साथ इस भुजा को उसी तनाव के साथ नीचे की ओर ले आयें व अपने शरीर के साथ सटा कर खड़े रहें। ज्योंही भुजा नीचे की ओर जायेगी त्यों ही पैरों की एड़ियाँ भी साथ ही साथ नीचे आ जायेंगी। अब आप पूर्ववत सम अवस्था में आ गए। इसके बाद दूसरी भुजा का भी अभ्यास इसी प्रकार करें व फिर समस्थिति में आकर पुनः दोनों भुजाओं को एक साथ ऊपर को उठाओ व कन्धों के पास ले जाकर फैलाओ व इसके बाद दोनों ही भुजाओं को पूर्ववत ऊपर खूब तनाव के साथ ले जाओ फिर उसी प्रकार शनैः–शनैः समस्थिति में आ जाओ। इसी का नाम ताड़ासन है।

<u>लाभ</u> – इसी आसन के करने से छाती की व कमर की माँस ग्रन्थियों पर खिंचाव पड़ता है। पैरों की एड़ियाँ उठाने से दोनों पैरों की पिण्डलियों व जंघाओं पर व मलमूत्र का विसर्जन करने वाली नाड़ियों पर व ऊपर की ओर दोनों भुजाओं का तनाव होने से दोनों भुजाओं पर पूरा–पूरा प्रभाव पड़ता है। अतः इस आसन के करने से हृदय व फेंफड़ों को पूरा–पूरा बल मिलता है। आँतें अपना काम ठीक–ठीक करने लगती हैं। कोष्ठ बद्धता आदि रोग व मूत्राशय सम्बन्धी रोगों में पूरा लाभ पहुँचता है। इसके साथ–साथ शरीर पर बराबर तनाव पड़ने से शरीर मान को बढ़ाता है (अर्थात लम्बाई बढ़ती है।)

योगो भवति दुःखहा

(स्वामी आत्मशरणानन्द)

आज संसार में हर व्यक्ति परेशान नजर आता है जबकि भौतिक विज्ञान ने मनुष्य के सुख सुविधा के लिये एक से एक सुखद साधन प्रदान कर दिये हैं। मनुष्य के परेशानियों व दु:खो का प्रमुख कारण यह है कि मनुष्य अपने केन्द्र–बिन्दु से हट गया है। जिस प्रकार से हमारे शरीर के मध्य मे नाभि केन्द्र–बिन्दु है जहाँ से हजारों नाड़ियाँ जुडी हुई हैं उस केन्द्र–बिन्दु के खिसक जाने पर शरीर के क्रिया–कलाप असन्तुलित हो जाते हैं स्वास्थ्य खराब हो जाता है। पाचन–शक्ति में व्यतिक्रम आ जाता है। ऐसी स्थिति में नाभिमण्डल के ठीक करने पर ही स्वास्थ्य ठीक रहता है मनुष्य व्याधियों से मुक्त हो जाता है। इसी तरह से मनुष्य अपनी चेतना के केन्द्र (आत्मा) के चिन्तन से दूर हो चुका है। आज मनुष्य भौतिक स्तर पर ही जी रहा है। खान–पान प्रदूषित हो। चुका है इसके ग्रहण करने की रीति ठीक नहीं है, कमाई भी शुद्ध नहीं है।

मनुष्य एक मशीन की भाँति मूढ़ता पूर्वक कार्यों में लगा हुआ है। पूर्वजों के ज्ञान एवं अनुभवों की अवहेलना करके भौतिक विकास की दुहाई दे रहा है। जीवन के चौराहे पर खड़ा अर्जुन की भाँति किंकर्तव्य–विमूढ़ हो रहा है। शास्त्रों मे वर्णित विहित व अविहित कर्मो का सन्देश व ज्ञान को न मानकर मनमाने ढंग से कार्यों में प्रवृत्त हो रहा है। इसी मनमुखी प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति अशान्त व क्लेश युक्त हो रहा है। हमारे ऋषियों ने जीवन के अमूल्य मान–दण्ड दिये हैं उनके अनुसार चलने पर ही सुखी जीवनयापन हो सकता है। महर्षि पतञ्जलि देव जी ने यम–नियमों के माध्यम से मनुष्य को सत्य–अहिंसा आदि व्रतों के द्वारा जीवन को संयमित और नियमित कर जीवन को सभ्य व व्यवहारिक रूप देने का उपदेश दिया है। इन व्रतों का पालन करने से व्यक्ति के जीवन में इन व्रतों के दुर्लभ परिणाम को प्राप्त कर मानसिक शक्तियों से परिपूर्ण बन जाया करता है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, संतोष तथा दया आदि के भाव मानव जीवन की आधार–भित्ति माने गये हैं। इन नियमों का पालन करने से व्यक्ति अपने जीवन को संयमित रखकर जहाँ स्वयं सुखी रह सकता है वहीं पर दूसरों को भी सुखी बना सकता है। परिणामतः मनुष्य शान्ति को प्राप्त कर दूसरों को भी शान्ति दे सकता है।

आज मनुष्य योग शब्द से तो परिचित होता चला आ रहा है। योग को अधिकाँश लोग अच्छे स्वास्थ्य के लिये उपयोगी साधन मान कर उस ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। पर योग के वास्तविक स्वरूप और जीवन–मरण के समग्र क्लेशों को दूर करने में सक्षम इस गूढ़ विद्या के महत्व को हर व्यक्ति नहीं जानता।

यदि मनुष्य अष्टाङ्ग योग के समस्त अंगों को अपने जीवन में धारण कर ले तो जीवन परम सुखी व दिव्य बन सकता है। आज व्यक्ति अपने स्वार्थ, लोभ, हिंसा, बेइमानी व अन्याय

का त्याग नही कर पा रहा हैं। जिस दिन मनुष्य इन दुर्गुणों को त्याग देगा तभी वह सुख के सागर में परम शान्ति का अनुभव करेगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में कई महान पुरुषों ने योग को प्रयोग कर व्यवहारिक जीवन में उतारने का प्रयास किया है। सन् 1967–68 में भी विश्वयोग सम्मेलन रखा गया और तमाम देशों के प्रतिनिधियों ने दिल्ली में आकर इसमें भाग लिया। सम्मेलन का उद्देश्य था कि एक सर्वमान्य योग का विश्व विद्यालय स्थापित किया जाये जहाँ से इन अमूल्य विद्या का प्रचार–प्रसार हो सके, किन्तु विचार–विचार तक ही सीमित रह गये। भारत के योगियों ने (गुरुदेव ने) तब भी कहा था – योग भारत की विद्या है इस का विश्व विद्यालय भारत में ही बनना चाहिये अन्यत्र नहीं। एक दशक के बाद ब्रह्मचारी धीरेद्र जी तथा स्वामी हरिभक्त चैतन्य जी ने योग के आसन एवं सूक्ष्म व्यायाम पर पुस्तक प्रकाशित की थी लेकिन प्रचार संसाधनों के अभाव में प्रचार ज्यादा नहीं हो पाया। यद्यपि टेलीविजन के डी.डी.वन चैनल में आसनों का प्रदर्शन दिखाया जाता रहा। आज संचार माध्यमों की बहुलता है सैकड़ों प्राइवेट चैनल चल रहे हैं जिन में आसन, प्राणायाम आदि की शिक्षा भी प्रसारित हो रही है। आज हमारे वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री मोदी जी भी योग के साधक जिज्ञासु बनकर इन अमूल्य ज्ञान के प्रचार प्रसार में अग्रसर हो रहे हैं यह देश के लिये गौरव व प्रसन्नता की बात है। योग से ही मनुष्य का जीवन सुखी तथा विश्व में शान्ति कायम की जा सकती है। अत: योग को जीवन में धारण करने पर ही मनुष्य सुख पा सकेगा।

लोग तुम्हारी स्तुति करें या निन्दा, लक्ष्मी तुम्हारे ऊपर कृपालु हो या न हो,
तुम्हारा देहान्त आज हो या एक युग में, तुम न्यायपथ से कभी भ्रष्ट न हो।

– स्वामी विवेकानन्द

सत्वानुरूपा श्रध्दा भवति

– कृष्ण कुमार पाण्डेय प्रवक्ता, गोरखपुर

कलियुग में जन्म लेने वाला व्यक्ति भौतिक संसाधनों से सम्पन्न है। संसाधनों की सम्पन्नता से व्यक्ति अपने अन्तःकरण की स्थितियों का ज्ञान नहीं कर पाता है। इसी कारण वह सफलता और असफलता को प्राप्त करता है। सफलता उसके श्रद्धा का प्रतिफल असफलता उसके अश्रद्धा का परिणाम है। एकाग्र मन से किया गया कार्य निश्चित परिणाम देता है। बिना एकाग्र मन से किया गया कार्य असफलता का द्योतक है। यह बात ऐसे सिद्ध होता है जैसे कोई बालक कलिकाल का साधन टेलीविजन बड़े एकाग्र मन, एवं बुद्धि से देखता है। वह उस चलचित्र में प्रदर्शित सभी चीजों को याद भी कर लेता है। जबकि अध्ययन में वह कदाचित असफल रहता है। अध्ययन की विषयवस्तु याद नहीं हो पाती है। उसके लिए औषधियों शंखपुष्पी आदि का सेवन करता है। तब कदाचित सफलता प्राप्त कर पाता है।

युद्ध के मैदान में अर्जुन संशय की स्थिति में आ जाता है। भगवान उसके सारे संशयों को समाप्त कर देते हैं। अंततः उसमें युद्ध के प्रति कर्त्तव्य भाव जागृत हो जाते हैं। वह युद्ध करने के लिए पूरी श्रद्धा के साथ तैयार हो जाता है। पुनः उसी सत्त्वानुरूप श्रद्धा के भाव से भगवान योग योगेश्वर श्री कृष्ण से पूछता है कि – हे कृष्ण कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जो शायद शास्त्र को जानते नहीं या जानकर भी उसके अनुसार तो नहीं, बल्कि अपने अन्तःशरण की श्रद्धा से देवता आदि का पूजन तथा अपने कार्य का सम्पादन करते है। इस संसार मे उनकी कौन सी गति मति बनती है। अर्जुन के उस प्रश्न को सुनकर भगवान कहते हैं कि –

लिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां श्रृणु ।।

अर्थात् – हे अर्जुन यह श्रद्धा मनुष्यों के अनन्त जन्मों मे किये हुए कर्मो के सञ्चित संस्कार से उत्पन्न हुई स्वभाव जो श्रद्धा सात्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकार की होती है।" यह मनुष्य के अन्तःकरण के सात्त्विकी वृत्ति के अनुरूप ही होती है। इसी प्रकार तीन प्रकार के व्यक्ति भी इस संसार मे कहे गये हैं। इसी वृत्ति के अनुसार देवतागण सृष्टि की रचना, पालना एवं संहार करने का कार्य भी करते हैं। मनुष्यों के कार्य भी अपनी वृत्ति के अनुसार होते हैं। जैसे सात्त्विकी वृत्ति वाला पुरुष देवताओं का पूजन, बड़ों का सम्मान, सदवृत्ति का आचरण करना सदग्रन्थों का अध्ययन करना ही उसकी प्रवृत्ति होती है। राजसी प्रवृत्ति के पुरुष यक्ष आदि की पूजा करते हैं। सदैव क्रियाशील होकर साहसी, असाहसी कार्यो को करते हैं। तामसी प्रकृति के पुरुष प्रेतों तथा भूतगणों को पूजते है। उनकी वृत्तियाँ चंचल होती हैं। वे सदैव असदकृत कार्यो को सोचते एवं करते रहते हैं। जिसके बुरे परिणाम को भोगते रहते हैं। सदैव अशान्त चित्त एवं मन बना रहता हैं। संसार में व्यर्थ परेशान होते रहते हैं। उसी तरह से व्यक्ति को भोजन भी वृत्ति के अनुसार रूचिकर

लगता है। यज्ञ, तप, दान भी व्यक्ति अपनी सत्ता स्वरूप वृत्ति के अनुसार करता रहता है। सात्त्विकी वृत्ति के मनुष्यों के भोजन के बारे में बताते हुए भगवान कहते हैं कि –

आयुः सत्त्वावलारोग्य सुख प्रीति विवर्धनाः।

रस्याः स्निग्धाः स्थिराह्रद्या आहाराः सात्त्विप्रियाः।।

अर्थात् – सात्त्विक वृत्ति वाले का भोजन ऐसा हो जो आयु, बल, बुद्धि, आरोग्यता, सुख और प्रेम को बढ़ाने वाला रसयुक्त, चिकना (दही, दूध, घी आदि) तथा शरीर में दीर्घ कालिक स्थिरता को देने वाला, तथा मन को प्रसन्न करने वाला होता है।

राजसी वृत्ति वाले मनुष्यों के भोजन के बारे में बताते हुए भगवान ने कहा –

कट्वम्लवणात्युष्णतीक्ष्ण रुक्ष विदाहिनः।

आहारा राजसस्येष्टा दुःख शोकामय प्रदाः।।

अर्थात राजसी वृत्ति का भोजन, कडुवा, खट्टा अधिक लवण से युक्त गरम तीखा, रूखा, दाहकारक, दुःख चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करने वाला होता है। ऐसे अन्न को ग्रहण करने वाले व्यक्ति की वृत्ति भी इसी के अनुसार बनती है। अब तामसी वृत्ति के लोगों के बारे में बताते हुए कहा कि –

यातयामं गतरसंशति पर्युषितं च यत्।

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामस प्रियम्।।

अर्थात ऐसा भोजन जिस पर से रात्रि चली गयी हो अर्थात बासी, रसरहित, अधपका, दुर्गन्धयुक्त और अच्छिष्ट तथा अपवित्र भोजन तामसी लोगों को प्रिय होता है। ऐसे अन्न को व्यक्ति खाने वाले की वृत्ति भी उसी अन्न के अनुसार कार्य करेगी। इसी प्रकार से यज्ञ, दान और तप भी व्यक्ति अपनी सत्त्वानुरूपा श्रद्धा के अनुसार करता है। जैसे सात्त्विकी वृत्ति वाला व्यक्ति निष्काम भाव शास्त्रानुमोदित यज्ञ, दान और तप को करता है। क्योंकि वह यह जानता है जिस सुन्दर शरीर को ईश्वर ने दे रखा है। उस ईश्वर के प्रति भी मेरा कर्तव्य है कि हम कृतज्ञ भाव से शरीर का प्रयोग करें। जैसा कि शास्त्रकारों ने कहा कि यदि व्यक्ति के पास शारीरिक शक्ति है तो दुर्बल और दीनों की रक्षा करें। यदि धन है तो दीनों दुखियों की मदद करें, यदि ज्ञान है तो समाज में दान देकर समरसता पैदा करें। जिससे एक जैसी वृत्ति के लोग समाज में बनें। कुछ ऐसी वृत्ति वाले लोग होते हैं जो दान, यज्ञ और तप दम्भ आचरण के लिए या किसी फल के प्रयोजन के हेतु करते हैं। तामसी वृत्ति वाला शास्त्र विधि से हीन, अन्नदान से रहित, मंत्र रहित एवं बिना श्रद्धा के करते हैं। इनका कार्य भी उनके किये गये वृत्ति के अनुसार होते हैं। राजसी वृत्ति वाले का तप भी क्षणिक फल को प्रदान करने वाला होता है। क्योंकि ये स्वार्थ से युक्त होकर पाखण्ड पूर्वक तप करते हैं। पाखण्डी के कार्य लोगों पर क्षणिक होता है। यह स्थायी प्रभाव डालने वाला नहीं होता है। ऐसे ही तामसी वृत्ति के लोग हठता पूर्वक, मन वाणी एवं स्वयं के शरीर को कष्ट देकर तथा सदैव दूसरों के अनिष्ट की आकांक्षा रखते हुए कदाचित तपश्चर्या करते हैं। इनका तप, दान, भी तिरस्कार युक्त अयोग्य व्यक्ति को एवं देश काल का होता है। जबकि सात्त्विकी वृत्ति वालों का दान कर्त्तव्य भाव वाला देश

काल को समझ कर, जिस वस्तु की जिसके पास अभाव हो वह उनको ही योग्य पात्र समझ कर देता है। राजसी वृत्ति वाले का दान मान, सम्मान प्रतिष्ठा के लिए होता है। इसके अतिरिक्त रोग निवृत्ति एवं स्ववृत्ति पोषण वाली होती है। जैसा कि आज वर्तमान युग में हमारे राजनेता का वर्ग कर रहा है। समाज एवं व्यक्ति का हितार्थ तामसी एवं राजसी वृत्तियों वाले व्यक्ति से किसी भी प्रकार नहीं हो सकता है। अस्तु योगेश्वर कृष्ण के उपदेश के अनुसार शास्त्र सम्मत कर्म ही करने योग्य है। जो साधक एवं समाज के कल्याण का कारक तथा उत्थान का कारण बनेगा। कलिकाल के पुरुषों के लिए आत्मोत्थान के लिए सरल उपाय अपने ईष्ट के नाम का स्मरण, सात्त्विक आचरण, को धारण करना श्रेयस्कर है। गोस्वामी तुलसी दास ने भी नाम स्मरण की महत्ता को बताते हुए कहा कि –

नाम प्रसाद शंभुअविनाशी। साजु अमंगल मंगल राशि।।

अर्थात् अविनाशी भगवान शंकर अमंल वेष को धारण करने पर नाम के प्रभाव से मंगल की राशि बने हुए है। भर्तहरि के ये उदबोधन जो कलिकाल के मनुष्यों के लिए उपयोगी हैं। जीव को चैतन्य करने के लिए प्रेरक होगा –

भोगा भंगुर वृत्तयों वहुविधास्ते रेव वायं।

भवस्तत्कस्येह कृतंवरि भ्रमत रेलो का: कृतंचेष्टितै: ।।

आशा पाशशतो पशान्ति विशदंचेत: समाधीयतां।

कामोच्छेत्तृहरे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वच: ।।

अर्थात् हे मनुष्यों– इस संसार में नाना प्रकार के क्षणिक सुख देने वाले भोग ही जन्ममरण के कारण हैं। इसलिए यहाँ किसके लिए भ्रमण कर रहे हो व्यापार भी क्षणिक भोग देने वाला है। इसलिए सैकड़ों आशा पाश को तोड़कर निर्मल चित्त होकर काम नाशक भगवान शंकर में श्रद्धा पूर्वक मन लगाकर उनका स्मरण करो। योगेश्वर भगवान कृष्ण के ये उपदेश जो अर्जुन को दिये गये। वे आज सर्वसमाज के लिए परम उपयोगी हैं। भगवान ने कहा –

अश्रद्धया हुतंदत्तं तपस्तप्तं कृतंचयत् ।

असदित्युच्यते पार्थ न चतत्प्रेत्य नो इह ।।

अर्थात् हे अर्जुन बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया गया दान तप एवं जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म सब असत् है वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के बाद भी। ऐसी परिस्थिति में सत्त्वानुरूपा श्रद्धावृत्ति को धारण करके संसार सागर से पार किया जा सकता है।

आश्रम समाचार......

(1). दतिया (म.प्र.) में 3 दिसम्बर से 6 दिसम्बर तक योग प्रचार मण्डल दतिया की ओर से कार्यक्रम रखा गया था। इसमें चारों दिन आचार्य डॉ. दासलाल जी के योग पर गूढ़ प्रवचन के साथ–साथ शास्त्रीय संगीत का बहुत रोचक कार्यक्रम चलता रहा। यह कार्यक्रम बाबू चन्दन सिंह जी की कोठी पर रखा गया था। कार्यक्रम में अनिल दूबे, सुनील दूबे, बाबू चन्दन सिंह, प्रदीप, हनी, गोलू, पप्पू, पं. सीताराम जी भट्ट तथा अन्य सभी गुरुभाईयों का पूर्ण सहयोग रहा। 6 तारीख को भण्डारे के साथ ही आचार्य जी को भावभीनी विदाई दी गई। वे ग्वालियर के लिये प्रस्थान कर गये।

(2). दिनांक 12 दिसम्बर से 14 दिसम्बर का योग प्रचार कार्यक्रम काल्पी मण्डल की ओर से रखा गया। जो बहुत सुन्दर वातावरण में निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज की अध्यक्षता में कार्यक्रम हुआ। आचार्य जी के प्रबोधिनी यौगिक व्याख्यान से सभी का हृदय गदगद हुआ। सभी गुरुदेव भगवान के पुराने कार्यक्रम को याद करने लगे। कार्यक्रम में योगेन्द्र नारायण शुक्ल, उमाशंकर गुप्त, जगदीश प्रसाद गुप्त (सपरिवार), जय कुमार खत्री, वीरेन्द्र सिंह, डॉ. अनिल दीक्षित आदि का पूरा–पूरा सहयोग रहा – 14 दिसम्बर को भण्डारे के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ।

जीवन तत्व साधन

जीवन तत्व साधन की नौ क्रियायें मुख्य हैं। जिनका उद्घाटन श्री प्रभु जी ने हिमालय से लौटने के बाद अपने मन से किया। उनमें सबसे पहली क्रिया ' सर्वोत्तान ' है।

1. इसमें सीधे लेट करके अपने सिर के पीछे दोनों हाथों की अँगुलियाँ, अँगुलियों में फँसाकर मिले हुए दोनों पंजों को उलटा करके उधर सीधे पैरों को रखकर तनाव देकर सारे शरीर को तनाव में लाना। इसे सर्वोत्तान नाम की क्रिया कहते हैं। यह क्रिया जीवन तत्व साधन के आरम्भ में तीन बार की जाती है। पूरे शरीर को तनाव में ला करके ढीला छोड़ देना चाहिये।

2. दूसरी क्रिया का नाम 'स्कन्ध चालन ' है। इस क्रिया में क्रमशः अपने दोनों स्कन्धों को आगे से पीछे और पीछे से आगे को गोलाकार घुमाना पड़ता है। जिस प्रकार साईकिल पर बैठने वाला व्यक्ति साईकिल के पैडल को गोलाकार चलाता है। अभ्यस्त हो जाने के बाद मनुष्य के दोनों कन्धे एक के बाद एक इस तरह चलने लगते हैं, जिस प्रकार रुई बेलने वाली चक्की का बेलन चला करता है। इस क्रिया के करने से दोनों फेंफड़े शुद्ध हो जाते हैं। रक्त व रस का संचार विधिपूर्वक होने लगता है। यकृत, प्लीहा आदि रोग स्वभावतः शान्त हो जाते हैं।

3. तीसरी क्रिया 'पग चालन' है। साधन करने वाला मनुष्य अपने मेरुदण्ड को सीधा करके लेट जाये। दाँया और बाँया हाथ अपने शरीर दण्ड के साथ सीधे जमाकर रखे हुए हों। उसके बाद बाँये पैर पर दाँये पैर को रखकर इस प्रकार हिलायें कि जिससे बायें पैर का अगूठा व दांये पैर की एड़ी जमीन को स्पर्श करे। इसी प्रकार से दाहिने पैर पर बायें पैरको रख करके पूर्वोक्त प्रकार से हिलाये, जिससे बायें पैर की एड़ी व दायें पैर का अंगूठा जमीन को बराबर स्पर्श करते रहें। इस क्रिया के करने में शरीर के नाभि से नीचे का पूरा भाग हिलता है। आँतें पूरा काम करने लगती हैं, कोष्ठ बद्धता आदि रोग निर्मूल हो जाया करते हैं।

4. चौथी क्रिया का नाम 'नाभि चालन' है। इसमें मनुष्य सीधा लेट करके अपने हाथों को पूर्वोक्त बताये कायदे से शरीर के बायें व दायें हाथों को सीधा जमा करके पेट को दाँये व बाँयें इस प्रकार हिलाये जिस प्रकार कि करवट बदली जाती है। इस क्रिया के करने से मन्दाग्नि की निवृत्ति होती है और अत्यन्त भूख बढ़ती है।

5. इसके बाद पाँचवीं क्रिया का नाम 'जानु प्रसार' है। इस क्रिया में पूर्ववत् सीधे लेटे रहें। एक पैर को बिल्कुल सीधा तनाये रहें और दूसरे पैर को मोड़ करके उ... सीधा रहने वाले पैर के घुटने के पास रखें और घुटने को तीन बार क्रमशः जमीन पर लगायें। दाहिने पैर का घुटना दाहिनी ओर तीन बार जमीन पर लगायें। इस प्रकार करने से स्नायु मण्डल में पूरा-पूरा तनाव हो जाता है और किसी भी प्रकार की स्नायुओं में विकृति नहीं रहती।

6. इसके बाद छठी क्रिया का नाम 'बाल मचलन' है। यह क्रिया बच्चों के मचलने का

अभिनय है। सीधे लेट करके अपने हाथ व पैरों को दाँये के बाद बाँया व बाँये के बाद दाँया इस प्रकार चलाओ जिस प्रकार मचलते हुए बच्चे करते हैं। यह क्रिया केवल एक ही मिनट पूरे वेग से की जाया करती है। एक मिनट पूरे वेग से करने के बाद बिल्कुल शान्त भाव से सीधे लेट जाओ व बच्चे के बालस्वरूप का निरन्तर ध्यान करो। अपने आपको भी बिल्कुल बालक समझो।

7. इस क्रिया के बाद लगभग तीन मिनट तक बच्चे का ध्यान करना चाहिये। इसके करने से शरीर में जीवनी शक्ति का पूरा–पूरा विकास होता है। मन में कार्य करने की स्फूर्ति पैदा होती है।

8. इसके बाद आठवीं क्रिया का नाम 'नाभि चालन' है। इस क्रिया में सीधे बैठ करके अपने दोनों पैरों को खूब दूर तक जितना भी अधिक से अधिक खोल कर फैला सकें फैला लें। उसके मेरु दण्ड को थोड़ा आगे की ओर झुका करके चक्राकार घुमाते हुये दोनों हाथों से अपने पैरों के दाँये व बायें पैरों के अँगूठों को स्पर्श करो अर्थात् जिस समय दाहिने हाथ से फैले हुए बाँए पैर के अँगूठे को छूओगे तो बाँया हाथ एकदम पीछे चला जायेगा और फैलाये हुए दाहिने पैर के अँगूठे को घुमाते हुए बाँयें हाथ से छूओगे तो दाहिना हाथ एकदम पीछे चला जायेगा। इस क्रिया के करने से यथानाम तथा गुण अर्थात् सभी नाड़ियों में पूरी गति होती है। रक्त व रस का ठीक बहन होता है।

9. इसके नवीं क्रिया का नाम 'उत्क्षेपण' है। इसमें सब क्रियायें करने के बाद सीधे खड़े हो जायें। क्रम से अपने दाहिने व बाँये पैरों को झटक दें व उसके बाद हाथों को झटक दें। इन्हीं नौ क्रियाओं का समुच्चय में नाम 'जीवन तत्व साधन' है।

इस साधन को करने वाला व्यक्ति प्रारम्भिक शिक्षण में सर्वोत्तान केवल तीन बार, स्कन्ध चालन केवल 10 मिनट, पग चालन दोनों तरफ का 5 मिनट, नाभि चालन 10 मिनट, जानु प्रसार केवल तीन–तीन बार, बाल मचलन 1 मिनट, बच्चे का ध्यान 3 मिनट , नाड़ी चालन 10 मिनट और उत्क्षेपण क्रिया केवल एक–एक बार करें। इन क्रियाओं के करने से भूख की अत्यन्त वृद्धि होती है। निरन्तर करने पर मनुष्य का कायाकल्प हो जाया करता है। जितने योगासन आजकल संसार में प्रचलित हैं, उन सभी का इन नौ क्रियाओं में सम्मुचय है। इन सबका प्राकट्य श्री प्रभु जी ने नैपाल हिमालय से लौटने के बाद अपने मन से किया। पुनः सवाँई गाँव में आने के बाद श्री प्रभु जी ने इन नौ साधनों का शिक्षण बाकायदा जारी रखा। इन क्रियाओं के करने के बाद एक विशेष प्रकार की स्थिति आ जाया करती है। इसमें पकवान बन्द करके केवल कच्ची सब्जी, कच्ची दाल आदि का ही सेवन करना पड़ता है। जिसमें भूख बराबर लगी रहती है। श्री सिद्धगुफ़ा पर निवास करते हुए श्री प्रभु जी ने यह साधन पूरी प्रबलता से कराया और परिणाम यह निकला कि यहाँ पर आसपास सब्जी का मिलना दुर्लभ हो गया। कच्चा खाने वाले साधक भूख के कारण अत्यन्त व्याकुल रहते थे। उनको यहाँ पर किसी भी भाव से खाने लायक सब्जी नहीं मिलती थी।

नववर्ष 2015 के शुभावतरण पर त्रिभाषा-रचित

(संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी में) पद्यात्मिका स्वरचनायें

– द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

(संस्कृत भाषायाम्)

सर्वे निजैः कर्मभिरेव बद्धाः, फलं तदीयं प्रियमप्रियं वा ।
भुञ्जामहेऽत्रैव न रमामहे किं, जुगुप्सिते कर्मणि भूय एव ।।1।।

द्विष्मो वयं किं न प्रभो ! भवद्भ्यः, विघ्नो भवानेव विराजतेऽन्तः ।
भूतेषु सर्वेषु तथापि कुर्मः, परोक्षभावेन भवन्निरादरम् ? ।।2।।

सुखं मृग्यमाणा वयं विस्मरामः, सुखं वर्धते तत्तु प्रदीयमानात् ।
भवद्वयातः प्रभवेदियत् प्रभो, करवाणि कर्माणि तवार्पितानि ।।3।।

याचे भवद्भ्यश्च नवीनवर्षे, कृपामियन्तामपि रोचते चेत् ।
यो योऽपि पठितुं प्रयतेत विज्ञः, जीवेच्छतं सुतनुषा, दशासा सुमनसा ।।4।।

(This is in Hindi Verses of Sanskrit Verses)

प्रभो ! बंधे हम सभी कर्म द्वारा, शुभ या अशुभ कर्म–फल भोगते हैं।
"है कर्म कुत्सित" यह जानते भी, वही कर्म क्या हम न करते रहे हैं ।।1।।

प्रभो ! जानते, आप सब में विराजे, नहीं आपसे द्वेष हम कर रहे हैं ।
हैं द्वेष करते किसी व्यक्ति से भी, निरादर न क्या आपका कर रहे हैं ? ।।2।।

रहे खोजते सुख, यही भूल जाते, सुख ही बढ़ेगा, सुख बाँटने पर ।
है कामना है प्रभो ! आपसे यह, करूँ कर्म भी आपको सामने कर ।।3।।

नया वर्ष आया नयी याचना यह, स्वीकार मेरी प्रभो ! यह भी कर लें ।
रसज्ञ, मर्मज्ञ, सुविज्ञ जो पढ़े, मानी, धनी और शतायु हों वे ।। 4 ।।

May the New Year be a Blissful one

(This is in English Verses of Sanskrit Verses)

Tied are we with the actions performed,
And undergo consequently the results auspicious or otherwise
Knowing the actions contemptibility even,
We go on performing becoming unwise. (1)

We Know O Lord ! you are seated in one and all,
Showing hatred into one, do we not hate you O Lord !
Exhibiting hatred against anyone in person,
Do we not indirectly despise much the God. (2)

Sought for is happiness, but forget we,
Sharing pleasures multiplies the happiness.
I wish Lord ! a boon from yourself,
Whatever should I do, may do experiencing your nearness. (3)

The New Year has dawned and again I beseech,
May this be accepted depending upon your benign Choice.
Be it gone through by anyone whosoever he be,
May beget the life's century, the honours, & wealth as its price. (4)

जयसिंह जादौन की प्राण रक्षा

– जगदीश राए बंसल 'अधम', दिल्ली

दोहा : सुन कर आर्त पुकार, गुरु जी आते हैं।
करते हैं शक्ति संचार, प्राण बचाते हैं।।

काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को साथ–साथ चलाने वाले अखण्ड–मण्डलाकार योग योगेश्वर गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, किसको किस समय और किस विधि से अपने श्री चरणों में स्थान दे दें और उसके जीवन की दशा एवं दिशा बदल कर उसे योग साधन की कला प्रदान कर दें, इस गहनता को समझ पाना, अच्छे–अच्छे साधकों के बूते से भी बाहर की बात है। इसीलिए कहा जाता है कि –

माली चुनता फूल जिस तरह, फूलों भरी कतार से।
निज बच्चों को आप खींचते, भीड़ भरे संसार से।।

आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का इसी प्रकार का यह कृपा प्रसंग आज से लगभग 17 वर्ष पहले का है। बात कुछ इस प्रकार बनी कि भाग्य विधाता योग योगेश्वर गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के परम लाड़ले कृपा शिष्य श्री दासलाल जी महाराज के तत्वाधान में गंगापुर सिटी (सवाई–माधोपुर–राजस्थान) के आदरणीय गुरु भाइयों द्वारा योग शिविर कार्यक्रम चलाया जा रहा था। स्थानीय श्रद्धालु गुरु भाई–बहिनों ने गंगापुर सिटी को पूरा गुरुमय बनाया हुआ था। दिनांक 17 मई 1995 की बात है। सायं काल के समय सत्संग के भजनों की मधुर ध्वनि से सत्संग स्थल के आस–पास आनन्द के बादल बरस रहे थे। इसी मध्य श्री जयसिंह जादौन नामक एक श्रीमान जी, जो स्थानीय एक स्कूल के संचालक हैं, अपने निवास स्थान से मस्ती में अपने स्कूल कार्यालय के लिए निकले। संयोग से मार्ग में उन्हें एक मित्र श्री देवकी नन्दन गुप्ता जी मिल गए। गुप्ता जी बोले, चलिए मा. जी सत्संग में गोता लगा लेते हैं। मास्टर जी ने कहा, दोस्त, आज–कल स्कूल में बच्चों के एडमिशन चल रहे हैं, मुझे कुछ आवश्यक कार्य निपटाने हैं...। इस प्रकार गप–गप करते–करते चारों पैर सत्संग रूपी गंगा तट पर पहुँच गए। भव्य पंडाल में पूज्य ज्ञानी बाबा के गाए भजन गूंज रहे थे। हारमोनियम, ढोलक, चिमटे अपना–अपना प्रभाव दिखा रहे थे। कोई भाई ध्वनि की लय पर झूम रहा था, कोई उचक–उचक कर ताली बजा रहा था, कोई ध्यान की मुद्रा में बैठा था। यानि भक्ति का रंग यौवन पर था। दुल्हन की तरह स्टेज सजी थी। महाप्रभू श्री रामलाल जी एवं गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी के दिव्य स्वरूप फूलों से लदे दरबार में आकर्षण का केन्द्र थे। स्वरूपों के ठीक दाहिने मुख्य वक्ता योगी राज श्री दासलाल जी महाराज शोभा पा रहे थे। स्वरूपों के ठीक मध्य दिव्य ज्योति का प्रकाश फैल रहा था। ....इत्यादि।

सत्संग में पहुंच कर गुप्ता जी ने वहीं से खड़े–खड़े दोनों स्वरूपों को प्रणाम किया और यथा स्थान पाकर बैठ गए। मगर मा. जी खड़े ही रहे और सारे पंडाल में आँखें तैराने के पश्चात् शीघ्र ही उचाट हो गए। पंडाल से वापिस होने से पहले श्रीमान् जी शरीर को कुछ मोड़ कर गुप्ता जी से कहने लगे कि गुप्ता जी! चलिए, अपने ए.सी. आफिस चलते हैं। वहाँ बैठकर एक–एक पैग का मजा लेंगे। यहाँ पसीने वार गर्मी में पोस्ट ग्रेजुएट मच्छरों के मध्य क्यों स्वयं को सजा दें? वैसे भी यह स्पीकार की भांय–भांय सुनना तो आलतू–फालतू आदमियों का काम है। इस बात को सुन कर गुप्ता जी ने अपना सिर हिला कर इन्कार कर दिया। गुप्ता जी के इन्कार से मा. जी बौखला गए और शरीर को झटका सा देते हुए चलते–चलते बोले, हूँ, पागल आदमी है। पागल शब्द सुन कर गुप्ता जी मन ही मन बुदबुदाए कि –

इन बिगड़े दिमागों में भी होते अमृत के लच्छे हैं।

हमें पागल ही रहने दो – हम पागल ही अच्छे हैं।।

मास्टर जी चट–पट अपने स्कूल कार्यालय में पहुंच गए। श्रीमान् जी ने ए.सी. तो फट ऑन कर लिया, मगर पैग वाला काम अभी नहीं किया। बच्चों के दाखिले वाला रजिस्टर खोला और पैन भी अपने हाथ में सम्भाल लिया। मगर मा. जी को एक अनजानी टीस सी होने लगी। सत्संग की सुगन्ध उसका पीछा कर रही थी। रह–रह कर मन करता कि सत्संग में चला जाऊँ। अगले ही क्षण मन करता कि लिखा–पढ़ी का काम निपटा लूं। इस दुविधा का परिणाम यह हुआ कि हमारे हरियाणा में एक कहावत है कि –

ना पूड़े – ना पापड़ी, ना बनाई – राबड़ी

अर्थात् कुछ नहीं हुआ। न तो स्कूल का कार्य निपटाया और न ही सत्संग का लाभ उठाया। कुछ समय पश्चात्, इसी उधेड़ बुन में मा. जी स्वगृह पहुँच कर अपने बिस्तर पर जा कर सो गए।

अब लीलाधारी की लीला देखिए कि लोक पावन आराध्यदेव जी के कितने प्यारे–प्यारे साधक बच्चे यह प्रार्थना करते हैं, आशा करते हैं कि गुरु–देव भगवान की हमें एक झलक मिल जाए। मगर झलक मिले या न मिले यह भाग्य विधाता गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की इच्छा पर निर्भर है। मगर भण्डारी जी यहाँ खुले भण्डार लुटा रहे हैं कि श्री जादौन मास्टर जी को अकारण दयालु गुरु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने दर्शन देकर कहा कि लल्ला! शराब तुझे छोड़ गई है, अब तू कभी शराब नहीं पी सकेगा।

गुरु वचन पलटे नहीं। पलट जाए ब्रह्माण्ड।।

मा. जी को निद्रा में दिया गया गुरुदेव भगवान का यह वचन आज तक पर्वत की चट्टान की तरह अडिग है। दिन में मा. जी ने अपने स्वप्न का अनुभव गुप्ता जी से सांझा किया। गुप्ता जी ने मन ही मन सत्संग में देखे गए स्वरूपों को प्रणाम किया और सत्संग पर गर्व कर छाती ठोक कर कहा कि –

सबकी जिन्दगी में खुशियाँ देने वाले, हमारी जिन्दगी में कोई गम ना हो।
हमको ऐसे दुर्लभ गुरु मिले, चाहे दीक्षा ली – ना ली हो।।

ऐसे गुरुदेव भगवान के दुर्लभ दर्शन – साथ में श्री मुख से निकले वरदाई चमत्कारी हितकारी वचन, हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री चन्द्रशेखर के भी कानों तक भी पहुँच गए। श्री चन्द्रशेखर के विषय में बताता चलूँ कि इस प्रसंग का श्रेय इन्हीं को जाता है। भाई जी होली पर्व दिनांक 7 मार्च 2012 के उपलक्ष्य में श्री संवाई धाम पधारे एवं गुरुदेव के निवास की तरफ श्री सिद्ध गुफा शैड की निर्माणाधीन बाऊन्डरी पर बैठ कर यह प्रसंग सुनाया और भाग्यशाली जादौन जी से मोबाइल सम्पर्क भी कराया। फोन पर मा. जी ने आप बीती सुनाई और गोहाना निवासी समस्त गुरु भाइयों संग मुझे गंगापुर सिटी आने का बढ़िया सा निमन्त्रण भी दे डाला। मा. जी ने आगे बताया कि एक सामान्य समय व्यतीत होने के पश्चात् मैंने 19 अगस्त 2010 को घरौंडा आश्रम में आ. श्री दासलाल जी महाराज से दीक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त किया। परन्तु सन् 2010 की ही सर्द ऋतु में मुझ पर किसी कलिष्ट संस्कार ने आक्रमण कर दिया। मेरे को पीड़ा रहने लगी। एक भाई की सिफारिश पर मुझे भारतीय आयु विज्ञान संस्थान (एम्स) देहली भेजा गया। वहाँ के विशेषज्ञ डॉ. एन.के. अग्रवाल की देख–रेख में तमाम निरीक्षणों के पश्चात् मुझे कैंसर ग्रस्त घोषित कर दिया गया। कैंसर का अस्पताल अपने जयपुर में भी चिरपरिचित है। अतः अब जयपुर के महावीर कैंसर इंस्टिट्यूट के विशेषज्ञ डॉ. एस.आर. महता के हवाले हो गया। आवश्यक जाँच पड़ताल के पश्चात् डॉ. महता ने कैन्सर की तो पुष्टि की, साथ ही मुझे बम्बई रैफर कर दिया। हमारे होश हवाश गुम हो गए। दुःख की इस घड़ी में स्वप्न दृष्ट सर्व समर्थ श्री चन्द्रमोहन महाराज की याद आना स्वाभाविक ही था। हमारे प्रार्थना के स्वर स्वतः चल पड़े।

दया करो गुरुदेव, हम पर दया करो।
शरण पड़े तेरे द्वार, कैन्सर ठीक करो।।
शुभ–शुभ मेरे कर्म नहीं थे, भक्तों जैसे धर्म नहीं थे
शर्म सार हूँ सरकार, मुझ पर दया करो
दया करो ....(1)
आकर मेरे प्राण बचा दो, सिद्धगुफा में मुझे बैठा दो
क्षमा करो दातार, मुझ पर ....(2)
अनेकों को तूने जीवन दान दिया है, दुनियाँ को तूने निरोग किया है
मुझ को है दरकार, मुझ पर ....(3)

परिणामतः मुझे बम्बई के टाटा मैमोरियल अस्पताल ले जाया गया। वहाँ पर गहन निरीक्षण में मेरा हिमोग्लोबिन 19 पाया, जबकि सामान्य 13 ही होता है। इस बात का तात्पर्य यह

है कि शरीर का रक्त गाढ़ा हो गया–जम गया है। इसे निकालना पड़ेगा। यह क्रिया एक माह में चार बार करवानी होगी। इस बात से तो हमारी सांसें अटक गई और अपनी रिपोर्ट लेकर जयपुर ही आ गए। जयपुर पहुँचते ही हमने श्री बाबू राम शर्मा को चरण रज लाने के लिए सवाई धाम भेज दिया।

शारीरिक कष्ट के अतिरिक्त, मुझे मानसिक पश्चाताप भी था कि उस दिन मैंने शर्मा जी को क्या–क्या कह डाला और उसी रात स्वप्न में आए महाराज जी के दर्शन एवं हितकारी वरदान का महत्व नहीं जान पाया तथा शीघ्र दीक्षा न लेकर, इतना लेट हो गया। क्या–अकारण दयालु संकट मोचक मेरे अपराधों को क्षमा कर मुझे प्राण दान देंगे? प्रतिपल स्मरणीय सर्व समर्थ दादा गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चरणों में बार–बार वन्दना है कि –

नैय्या तेरे लल्ला की, डोले बीच मझधार।
गुरु वर आकर थाम लो, ये पड़ी पतवार।।

इधर श्री शर्मा जी आनन–फानन में पूज्य गुरु जी श्री दासलाल जी को हालत से अवगत करा कर संजीवनी चरण–रज ले आए। महाराज जी ने कहा कि प्रभु जी सब ठीक करेंगे। इसे देते रहना या यूं समझ लें कि

फिकर मत कर बावरे, मत कर मन में सोच।
गुरुवर का ध्यान कर, छोड़ सभी संकोच।।

गुरु जी का रज प्रसाद लेने के पश्चात् मैंने दवाई लेनी बन्द कर दी। तथा प्रातः सायं एक–एक घण्टा जगत नियन्ता श्री चन्द्रमोहन जी महारजा का ध्यान प्रारम्भ कर दिया।

आ गई लहर शिवा के मन में ।।

मेरी पीड़ा ने करवट ली और अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। मेरा हीमोग्लोबिन अब सामान्य है। जयपुर के डॉक्टर भी चकित हैं कि यह कमाल कैसे हुआ। आपको बता दूँ ऐसे हुआ कि –

विभूति मेरे गुरु की कमाल करती।
जिसने भी खाई उसको निहाल करती।।

गुरुदेव भगवान का आभार व्यक्त करने को तो शब्द नहीं है। मगर अपनी अल्प बुद्धि से गुरु गुणगान की केसैट एवं लोकट आदि उपलब्ध किये हैं। गुरु जी की उपलब्धि के बारे क्या बताऊँ, क्या नहीं बताऊँ? बस इतना ही बोलूंगा कि गुरु जी ने जैसे मुझे निहाल किया है, आप सबको भी वैसा ही निहाल करें। मेरे गुरु भाईयों –

ये तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
शीश दिए ऐसे गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।

गुरु वन्दना

– ले. (स्व.) बनवारी लाल चतुर्वेदी, फिरोजाबाद

(1)

धनि धनि श्री गुरुदेव, जगत तुम्हरे गुण गावत।
योगी यती महेश शेष, सुरपति सिर नावत।।
तुम्हरे द्वारे आय सबै, तुअ भिक्षा मांगत।
है नर पावत वही, जाहि तुम ही अपनावत।।
है मिलबौ अति कठिन तव ज्यों तारागण गगन के।
पाय मनुज तुमकौ पुनः, परत जाल नहिं ठगन कै।।

(2)

हिय में प्रभा–प्रकाश आपनौ, सुख सरसावत।
दरसावत शुभ अशुभ, नीति निर्णय करवावत।।
पावन परम अनूप शान्ति दै, मोद मनावन।
भली भांति अज्ञान शत्रु कौ नास नसावन।।
ऋषि मुनी तपसी सदा, बाट तुम्हारी जोहते।
तव गुण–सिन्धु अपार हैं, सुजन ह्रदय अति मोहते।।

(3)

जगहित कारण ज्ञान–सिन्धु सन्मार्ग दिखाये।
कीन्हीं जा पर दया, नाथ त्रय ताप नसाये।।
और और तौ और, ईश हू जाय मिलाये।
जानें तुम कहँ चीन्ह, लयौ जीवन फल पाये।।
बिना तुम्हारे जीव कौ, जीवन जन्म न सार है।
जो जन तुमहिं न पावहीं, वो जग में भूभार है।।

अथर्व वेद

ब्रह्मचर्येण तप सा देवा मृत्युमुपाघ्नत्।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वरा भरत्।।

ब्रह्मचर्य का पालन और तपस्या करके देव पुरुषों ने मृत्यु को मार भगाया है। ब्रह्मचर्य का पालन कर यह जीवात्मा इन्द्रियों से दुर्लभ सुख को प्राप्त करता है।

विमर्श – जीवात्मा अपने कर्मो का शुभाशुभ फल भोगने के लिए, नाना प्रकार की ***योनियों में बार-बार जन्म लेता है और मरता है।*** मनुष्य योनि में वह फल भोगने के साथ ही नया कर्म भी करता है जबकि इस योनि के अलावा ***अन्य सभी योनियों में जीवात्मा सिर्फ पूर्व कर्मों का फल भोगता है नया कर्म नहीं करता।*** ऐसी दुर्लभ और अत्यन्त उपयोगी मनुष्य योनि का समय, नाना प्रकार के विषयभोग और कुकर्मों को करने में उलझा रह कर, बेकार व्यतीत कर देता है और ***इन कर्मों का फल भोगने के लिए विभिन्न योनियों में भटकता रहता है।*** इस मनुष्य जीवन का सदुपयोग करने, उचित उपभोग करने और अच्छे कर्म पर आत्मोन्नति करने के लिए हमें ब्रह्मचर्य का पालन और व्यायाम का नियमित अभ्यास अवश्य करना चाहिए ताकि हम इस जीवन में लम्बे समय तक स्वस्थ और बलवान बने रह सकें और शुभ कर्म करते रह सकें।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER — BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विता।।

(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही सबका उत्पत्ति-स्थान हूँ और समस्त जगत् की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (सब कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते हैं।

संस्थापक :- परमयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14565 सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) दासलाल शर्मा